

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

Brown Book

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182580

UNIVERSAL
LIBRARY

CU P 68 11-1 68--2 (00)

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No **H8 29** Accession No **H254**
B54T

Author **तुलसीदास अटनागर, रावरा :**

Title **तुलसीदास 1948**

This book should be returned on or before the date
last marked below

तु ल सी दा स

लेखक

रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी० फ़िल



किताब महल * इलाहाबाद

प्रथम सस्करण, स० २००३

द्वितीय सस्करण, स० २००५

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।

मुद्रक—जय हिन्द प्रेस, कीटगज, प्रयाग ।

पूज्य पिता
श्री गोविन्दराम वकील
की
साकेत-वासिनी पुण्यात्मा को

जिनके वृद्ध कंठ से वचन के प्रभात में सुनी उत्तरकांड की इन
भक्ति-विह्वल पक्तियों में मुझे काव्य-प्रेमी और
कवि बना दिया—

‘कारण कवन नाथ नहि आये
जान कुटिल प्रभु मोहि बिसराये’

—रतन

२ सितम्बर, १९४६

दो शब्द

‘तुलसी साहित्य की भूमिका’ के बाद तुलसी-सम्बन्धी यह मंत्री दूसरी पुस्तक है। इस पुस्तक में तुलसी-सम्बन्धी गवेषणाओं और बाद-विवादों के चक्कर में न पड़ कर तुलसी साहित्य का एक विहंगम चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।

मध्ययुग के भक्तों और सत्तों में तुलसी का व्यक्तित्व हिमालय की तरह ऊँचा है। उनकी कविता लक्षावधि मनुष्यों की साधना और आनन्द की वस्तु बन गई है। कवि जीवन को सम्पूर्ण रूप में आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ा है। ऐसे महान् व्यक्तित्व को एक-दो पुस्तकों में परिशेष करना हास्य स्पर्द होगा। इसी से यह दूसरा प्रयास है।

आशा है, यह पुस्तक उन विद्यार्थियों को रुचेगी जो तुलसी के साहित्य-खोजियों के बाद-विवादों से ऊपर युग-पुरुष के रूप में देखना चाहेंगे।

प्रयाग,
सितम्बर, १९४६ }

रामरतन भटनागर

विषय-सूची

1. जीवनी और व्यक्तित्व	...	१
2. रचनाएँ और उनका संचित परिचय	...	२१
३. रामकथा	...	२८
4. राम	...	३७
5. तुलसी की भक्ति	...	५०
६. धर्म और दर्शने	...	९२
७. काव्य	...	११४
८. विनयपत्रिका की एक परख	...	१४३
९. तुलसी के अन्य ग्रन्थ	...	१५५
१०. तुलसी की मौलिकता		१८७
11. हिन्दी-साहित्य में तुलसी का स्थान	...	२४१
12. तुलसी का सदेश	...	२५७

जीवनी और व्यक्तित्व

महाकवि और रामभक्त गिरेश्वरिण तुलसीदास की जीवनी के निर्माण के सम्बन्ध में इधर कई वर्षों ने काम हो रहा है परन्तु अभी तक हम उनके सम्बन्ध में किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों पर नहीं पहुँचे हैं। जीवन-सम्बन्धी खोजों के आधार अनेक हैं परन्तु इनमें कई अप्रामाणिक निकलते हैं और कई किंवदंतियों और कवि की राम-भक्ति और जन-प्रतिष्ठा-प्राप्ति के उल्लेखों से आगे नहीं बढ़ते। ग्रन्थों के रूप में आधार है, १ गोसाईं चरित, २ मूल गोसाईं चरित, ३ तुलसी चरित, ४ भक्तमाल, ५ तुलसी माहव का वटरामायण (आत्मचरितवाला अंश), ६ भक्तमाल की प्रियदास की टीका, ७ दो सौ बावन वैष्णवों की कथा, ८ मोरोपत का तुलसीदास स्तवन ९ भविष्य पुराण। इनमें से दो भक्तमाल और मोरोपत के तुलसी स्तवन में कवि के जीवन में सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण साक्ष्य नहीं मिलता। भक्तमाल के लेखक नाभादास ने १२९वें छप्पय में कवि के विषय में इतना ही लिखा है—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालभीकि तुलसी भयो ।
 व्रता काव्यनिबध करी शत कोटि रमायन ॥
 इक अच्युत उच्चरे ब्रह्म इत्यादि परायन ।
 अब भक्तिन मुख दन बहुरि लीला विस्तारी ॥
 रामचरन रस भक्त रहत अहनिशि व्रत धारी ।
 समार अपार के पार को सुगम रूप नवका लियो ।
 कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालभीकि तुलसी भयो ॥

भक्तमाल का रचनाकाल स० १६४२ है। उद्धृत छप्पय से केवल इतना ही प्रगट होता है कि तुलसीदास इस समय तक भक्त और रामकथाकार के रूप में इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि नाभादास ने उन्हें निःसंकोच द्वितीय वाल्मीकि (वाल्मीकि का अवतार) कह दिया। मोरोपत के स्तवन में भी लगभग इसी प्रकार की सामग्री है। इसके अनुसार भी तुलसी वाल्मीकि के अवतार हैं और उन्होंने मात रामायणे (रामकथाएँ) लिखी है। स्तवन का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पड़ता है, इसमें यह ऐतिहासिक दृष्टि से हमसे अधिक दूर नहीं है। इस प्रकार के उल्लेख स्पष्टतयाः कवि के जीवनवृत्त के निर्माण में सहायक नहीं हो सकते।

भविष्यपुराण की मादय को पहली बार डा० माताप्रसाद ने (तुलसीदास पृ० १३) उपस्थित किया है जिसके अनुसार तुलसीदास गृहिणी के उपदेश से प्रेरित होकर ही राघवानन्द के पास आये और रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इसमें केवल तुलसी के गुरु का पता चलता है।

अन्य ग्रन्थों की सामग्री में ऐतिहासिकता से अधिक किम्बदंतियों का मिश्रण है। किम्बदंतियाँ सब में एक ही श्रेणी की हैं। वे या तो तुलसी के व्यक्तित्व को अतीत और चमत्कारिक मिश्र करती हैं या समकालीन ऐतिहासिक भक्तों और कवियों पर उनकी महत्ता सिद्ध करती हैं। इन किम्बदंतियों का सबसे बृहद् संग्रह भवानीदास का गोमाई चरित्र है जिसके रचनाकाल को हम स० १८१० के लगभग स्थिर कर सकते हैं। यह नवलकिशोर प्रेम से प्रकाशित महात्मा रामचरणदास की रामवर्तिमानस की भूमिका (तृतीय संस्करण सन् १९२४) की भूमिका के रूप में प्रकाशित है। इसमें किसी घटना या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का सम्बन्ध किसी तिथि से नहीं जोड़ा गया है। यही घटनाएँ और किम्बदंतियाँ बहुत कुछ इसी रूप में

परन्तु अधिकतः तिथियों के साथ वेनीमाधवदास के मूल 'गोसाई' चरित में उपस्थित है। कही २ तो पक्तियों में भी साम्य है। बाबा वेनीमाधवदास को तुलसी का समकालीन, उनका शिष्य और सखा कहा जाता है, अतः इस रचना के प्रामाणिक होने की आशा है, परन्तु वह सत्य की तुला पर किसी भी तोल नहीं चढ़ सकी है। इस कृति के अनुसार तुलसी का जन्म—संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी को (कालिंदी के तीर) हुआ। स० १५६१ माघ शुक्ल ५ शुक्रवार को यज्ञोपवीत हुआ, स० १५८३ ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार को विवाह हुआ। उन्होंने स० १६०७ माघकृष्ण १५, बुधवार को भगवान राम के दर्शन किये और स० १६३३ मार्गशीर्ष शुक्ल मंगलवार को रामचरितमानस को समाप्त किया। देहात-तिथि १६८० संवत् श्रावण कृष्ण ३, शनिवार है। इनमें पहली और पाँचवी तिथियाँ गणना से अशुद्ध सिद्ध होती हैं। इस ग्रन्थ के आधार पर तुलसीदास का जीवन-चरित बनाने का प्रयास किया गया है, फल है इन्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित और बाबू रयामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर-दत्त बड़तवाला द्वारा संपादित 'गोस्वामी तुलसीदास'। ग्रंथ तुलसी के जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को, उनकी रचनाओं और उनकी यात्राओं का संवत्-तिथि के साथ इतना व्योरेवार उपस्थित करता है कि सहसा इस ग्रंथ के "आधुनिक" होने का संदेह होता है। इसमें कुछ अलौकिक घटनाएँ ऐसी हैं जो नाभादास की भक्तमाल की टीका में भी मिलती हैं जैसे प्रेत का दर्शन होना, विधवा स्त्री के पति को फिर जिला देना, पत्थर के नन्दी का हत्यारे के हाथ से प्रसाद पाना और कृष्ण का राम में रूपांतरित हो जाना। परन्तु कितनी ही ऐसी घटनाएँ यहाँ पहली बार मिलेंगी जैसे जन्म लेते ही तुलसी का रामनाम का उच्चारण, उनके बत्तीस दाँतों का होना, पाँच वर्ष के बच्चे-समान दीखना। उनका अन्य बालकों की तरह रोना नहीं।

गौरा माई का तुलसीदास पर कृपा करना, शिव का दर्शन और लड़की को लड़का बना देना । यह सब बातें प्रियादाम की 'वार्ता' की शतशः मनगढ़ती की श्रेणी की हैं । इससे कवि के प्रति श्रद्धाभाव चाहे जितना बढ़े, इनका उसके जीवन-वृत्त के निर्माण में कोई स्थान होना कठिन है । साधारण जनता में लोकप्रिय नायक इसी रूप में प्रतिष्ठा पा जाते हैं जिस रूप में वार्ता, प्रियादाम और मूल गोमाई चरित तुलसीदास को हमारे सामने उपस्थित करते हैं—उसके लिए हम अपट श्रद्धाजीवी और चमत्कार प्रिय जनता को क्या कहें ? उनके अतिरिक्त कवि की कुछ ऐतिहासिक पुरुषों से भेट का भी उल्लेख है ? मरदान (म० १६१६), मीरासाई—पत्र द्वारा (म० १६१६), केशवदाम (१६४३-१६४४), बलभद्र (१६४३-१६४४), मुक्तमणिदाम (१६२४-३५) केशवदाम का प्रेत (म० १६५१), नन्ददाम (१६४९-५०) दिल्लीपति अकबर (१६५१) मलुकदाम (१६५१), जहाँगीर (१६७०) नाभादाम (१६४९-५०) । इनमें से कुछ भेटे असम्भव हैं । इतिहास साक्षी है । केशवदाम की सम्मति राणा म० १६५१ के बाद की है और इन सभी के आरम्भ में लेखक ने निर्भ्रान्त रूप में तिथि दे दी है, ऐसी अवस्था में इस सब में उनके प्रेत की भेट कहाँ तक ठीक बात है ? विद्वान लेखकों ने कुछ सम्भव हो सकने वाली भेटों को असम्भव दिखा दिया है जैसे इतिहास में म० १६७० के समीप जहाँगीर के बनारस आने का कहीं भी उल्लेख नहीं है—न स्वयं जहाँगीर के "तुज्ज जहाँगीरी" में, न समकालीन इतिहासकारों की रचनाओं में कुछ बातों से यह साफ प्रगट होता है कि ग्रन्थ का आधार जनश्रुतियाँ और कवि की कृतियाँ मात्र हैं परन्तु साथ ही किसी कारण से अनेक गढ़ी बातें जोड़ दी गई हैं —

१—तुलसी केशवदाम को प्राकृत कवि कहकर उनसे भेट करने

से इकार कर देते हैं, यह कदाचिन् तुलसी की ही पक्तियों की ध्वनि है।

कान्हे प्राकृत जन गुन गाना । गिर धुन गिरा लगत पछिताना ॥

(बाल० ११)

२—उनकी माता का नाम हुलसी था, इसके विषय में तुलसी की पक्ति है—

रामहि प्रिय पावनि तुलसी गी । तुलसीदाम हित दिये हुलसी सी ॥

(बाल० ३१)

परन्तु तुलसी की एक अन्य पक्ति से स्पष्ट है कि यहाँ हुलसी का अर्थ माता नहीं है—

शशु प्रसाद सुमति दिये हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ।

(बाल० ३६)

३—जन्म होते ही इन्होंने रामनाम का उच्चारण किया, इससे इनका नाम 'रामबोला' पड़ा। विनयपत्रिका में तुलसी ने अपने इस नाम का उल्लेख किया है। परन्तु वह कदाचिन् आन्यात्मिक अर्थों में ग्रहण किया जा सकता है—

राम को गुलाम नाम रामबोला राम्यो राम ।

काट यहें नाम है हो कबहुँ कहत हो ॥

(विनय० ७६)

'रामबोला' नाम हो गुलाम राम साहि को ।

(कविता० उत्तर० १००)

४—तुलसी के गुरु नरहरि और शिष्या-क्षेत्र सूकरखेत के उल्लेख भी मानस से प्राप्य है—

कृपासिधु नर रूप हरि

(बाल० १)

मै पुनि निज गुर सन सुनी कथा सों सकर खेत ।

समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥

(बाल० ३०)

इस प्रकार हम मूल गौसाई चरत द्वारा उपस्थित सामग्री को मन्देह कं दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार का एक ग्रन्थ बाबा रघुवरदास का तुलसी चरित है जिसका कुछ अंश कई बने हुए “मर्यादा” प्रतिका में प्रकाशित हुआ था। परिचयकार के लेख से पता चलता है कि यह तुलसी के जीवन-सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे अधिक महत्काय होगा। परन्तु यह प्रकाशित नहीं हुआ है, न इसका कोई पता ही फिर लगा। प्रकाशित अंश की परीक्षा करने पर ही यह भ्रान्तिपूर्ण मिथ्य होता है। प्रियादास की भक्तमाल की टीका (स० १७६९) में तुलसी के जीवन से सम्बन्धित ७ घटनाओं का उल्लेख है—

१—तुलसीदास अपनी स्त्री से अत्यन्त प्रेम करते थे, उसी की भर्तृमना से विरागी होकर काशी चले गये (कवित्त ५०८)

२—काशी में उन्होंने एक प्रेत को प्रसन्न किया और उसके द्वारा हनुमानजी की प्राप्ति की। प्रेत ने उन्हें रामदर्शन कराया। (५०९, ५१०)

३—एक हत्यारा रामनाम लेता हुआ आया। तुलसी ने उनके हाथ से भोजन कर लिया। इससे पण्डितों में बड़ी हलचल मची। तुलसीदास ने हत्यारे के हाथ से पत्थर के शिवनन्दी को भोजन करा दिया, इस तरह उन्होंने पण्डितों का समाधान किया। (५११, ५१२)

४—कुछ चोर तुलसी के घर चोरी करने आए। उन्होंने देखा कि दो गोरे सौंघले बालक (गंगा-गंग ।) तीर कमान लेकर रक्षा करते हैं। प्रातः उन्होंने तुलसी पर यह बात प्रकट की। तुलसी ने धन-धान्य लुटा दिया। वे चोर रामभक्त हो गये। (५१३)

५—तुलसीदास विधवा को आशीष वचन देते हैं, अन्त में उन्हें उसके मृत पति का जीवनदान देना पड़ता है। (५१४)

६—तुलसी के चमत्कारों की बात सुनकर अकबर उन्हें बुलाता है, उनके करामात दिखाने में इकार करने पर उन्हें बन्दी कर लेता है। कवि हनुमान से प्रार्थना करता है। बन्दर प्रगट होकर उत्पात करने लगते हैं। यह उत्पात तब बन्द होता है जब बादशाह किला छोड़ने पर राजी हो जाता है और तुलसी को मुक्त कर देता है। (५१५, ५१६, ५१७)

७—तुलसी दिल्ली से लौटकर वृन्दावन जाते हैं। वहाँ नाभादास से भेंट होती है (५१७) वृन्दावन में वह मदनगोपाल की मूर्ति से प्रार्थना करके उसे राममूर्ति में बदल देते हैं। उपर्युक्त कथाओं में और बातों की अन्य सन्तो-भक्तों के सम्बन्ध में लिखी गई कथाओं में बहुत कुछ साम्य है। प्रियादास की तुलसी के स्त्री-प्रेम और तिरस्कार द्वारा भगवद्-विषयक-ज्ञानप्राप्ति की कथा वार्ता में यदुनाथदास से सम्बन्धित है (पृ० ८१) और प्रियादास की हत्यारेवाली कथा-वार्ता की 'लाहौर के पंडित की वार्ता' (पृ० ३१९) में मिलती है।

घट रामायण में तुलसीदास को कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा गया है। वे यमुना किनारे राजापुर ग्राम में उत्पन्न हुए। तुलसीदास ने इस ग्रन्थ में तुलसी-सम्बन्धी ४ तिथियाँ दी हैं—जन्म-तिथि स० १५८९ भाद्रपद, शुक्ला ११ मंगलवार ज्ञानोदय तिथि स० १६१४ श्रावण शुक्ला ९ काशी-आगमन-तिथि १६१५ सवत् चैत्र १२, मंगलवार और देहान्त-तिथि स० १६८० श्रावण शुक्ल ७। ये जन्म-मरण तिथियाँ लगभग वही हैं जो अधिकांश विद्वानों को मान्य हैं।

एक दूसरे प्रकार की सामग्री सोरो की सामग्री का समर्थन करती है। पहले हम “२५२ वैष्णवों की वार्ता” को ही लेंगे। इस ग्रन्थ में हम तुलसी के सम्बन्ध में इतनी सूचनाएँ पाते हैं—

१—तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई और रामचन्द्रजी के अन्य भक्त थे। (पृ० २८)

२—तुलसीदास काशी में रहते थे। उन्होंने भाषा में रामायण लिखी। (पृ० ३२)

३—तुलसीदास जी नन्ददासजी से मिलने के लिए ब्रज आये। गोवर्धन में दोनों की भेट हुई। दोनों गोवर्धननाथ जी के दर्शन को गए तो तुलसीदास ने माथा नहीं नवाया। इस पर नन्ददास ने यह जानकर अपने इष्टदेव से प्रार्थना की। उन्होंने रामरूप ग्रहण कर तुलसी को दर्शन दिये। (पृ० ३३, ३४, ३५)

इसमें से अतिम बात स्पष्ट रूप से तुलसी के व्यक्तित्व और चरित्र के विरोध में जा पड़ती है। जो व्यक्ति कृष्ण गीतावली-जैसा ६० सुन्दर छन्दों का कृष्णचरित काव्य लिख सकता है, जिसके लिए राम (ब्रह्म) का एक अवतार कृष्ण रूप में हुआ है—

त्रिगुण कुत-कुमुद राकेस रावारमन कम प्रगाटवा ब्रमकेत

(विनय० ५२)

वह किस प्रकार ऐसा कट्टर हो सकता है जैसा 'वार्त्ताकार' ने उसे चित्रित किया है। 'वार्त्ता' की अनेक अलौकिक एवं चमत्कारिक वदनाएँ श्रद्धाभाव और पुष्टिमार्ग के प्रचार में ही प्रेरित है। अतः उसके साक्ष्य को सोलह आना सत्य नहीं माना जा सकता।

सोगे की मामग्री विपुल है। उसमें मुख्य है—(१) सूकर क्षेत्र-महात्म्य जिसे स० १६७० में नन्ददास के पुत्र कृष्णदास ने रचा, (२) रत्नावली के दोहों के दो संग्रह (दोहा-रत्नावली और लघु दोहा-संग्रह—रत्नावली तुलसीदास की छाँ प्रसिद्ध है), (३) रत्नावली की पद्यबद्ध जीवनी जिसे मुरलीधर चतुर्वेदी ने लिखा और जिसका रचनाकाल स० १८८९ है। इस सामग्री की विस्तृत और निर्णयात्मक परीक्षा अभी नहीं हुई है और अभी बहुत कुछ अधिकार के गर्भ

में छिपा पड़ा है। इस सामग्री से कवि के प्रारम्भिक जीवन पर उत्साहवद्धक नवीन प्रकाश पड़ता है।

'माहात्म्य' से 'वार्ता' के इस उल्लेख की पुष्टि होती है कि तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई थे, परन्तु यहाँ वे चचेरे भाई हैं।

इस सामग्री का एक अरा सोरो की जनश्रुति भी है। सोरो में योगकर्म के मुहल्ले में एक प्राचीन हवेली को तुलसीदास का जन्म-स्थान बताया जाता है। अब मंदर द्वार तो बही है परन्तु शेष मकान कच्चा है जिसमें एक मुसलमान रहता है। मंडक पर कमाइयो की बस्ती है। आम-पास में कुछ मत्तह्य ब्राह्मणों के घर हैं। इसमें एक घराना है, जिसकी वंश-परंपरा नन्ददास तक चली कही जाती है। यहाँ एक मंदिर भी है जो नरसिंह जी महाराज का मंदिर कहा जाता है। जनश्रुति है कि "नरसिंह जी महाराज" से तुलसीदास के गुरु नरहरि का तात्पर्य है। इन नरसिंह महाराज के वंशधर आजकल इस मंदिर के मुख्या है। इन जनश्रुतियों की सत्यता सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई विशेष प्रमाण नहीं है। परन्तु यदि सोरो की दूसरी सामग्री सत्य है, तो ये जनश्रुतियाँ उसे पुष्ट करने के काम में आ सकती हैं।

परन्तु तुलसी के जीवनवृत्त के निर्माण के लिए सबसे प्रामाणिक सामग्री है स्वयं तुलसीदास का स्वकथित जीवनवृत्त। यह सामग्री तुलसी की कई रचनाओं में बिखरी पड़ी है। अपनी कविता में कवि ने यदि अपने व्यक्तित्व के सबंध में कुछ कहा है तो उस कथन को बहुत हद तक हमें प्रामाणिक मान कर ही चलना होगा। जनश्रुति और वाह्यसाक्ष्य में अतिशयोक्ति हो सकती है, बाद के लोग उसके काव्य-चमत्कार से प्रभावित होकर कवि के चारों ओर लौकिक और दैविक शक्तियों से सम्पन्न कथाओं का ताना-बाना बुन सकते हैं, परन्तु यह तो ठीक ही होगा कि कवि को अपने जीवनवृत्त के

सबध मे कोई भ्रान्ति नही होगी और शायद ही उसे आगामी पीढ़ियों को धोके मे डालने की इच्छा हो । इसी मत्तय का सहारा लेकर हम गुमाई तुलसीदास के जीवनवृत्त की खोज करते हैं । हमारे आधार उनके ग्रंथ होंगे ।

इस अतर्माद्य की दृष्टि से कवितावली, बाहुक और विनय पत्रिका मुख्य है । इनके बाद मानस, दोहावली, रामाज्ञा पश्न, पार्वती मंगल और बरवै रामायण । अन्य ग्रन्थो से जीवनवृत्त बनाने मे कोई सहायता नही मिलती ।

तुलसी के जन्मकाल के सबध मे उनके किसी भी ग्रंथ मे उल्लेख नही मिलता । माता-पिता के नाम का भी कही उल्लेख नही है । उनका नाम तुलसी था और कदाचित् वैराग्य धारण करने पर उन्होंने इसका तुलसीदास कर लिया—

नाम तुलसी भोडे भाग सो कहायो दास

कियो अगीकार तेमे बडे दगाव्राज को ।

(कवितावली उत्तर० १३)

अपने जीवन की सन्ध्या मे वे पूर्णतः रामाश्रित हो गये थे और अपने को 'रामभोला' कहने लगे थे, यह विनयपत्रिका मे स्पष्ट है ।

ज्ञानि की दृष्टि मे तुलसीदास ब्राह्मण थे, यह निर्विवाद है । परन्तु उनका सम्बन्ध ब्राह्मणो की किस उपजाति से था, यह निश्चयात्मक रूप मे नही कहा जा सकता । श्री मुधाकर द्विवेदी और डाक्टर ग्रियर्सन उन्हे सरयूपारीण ब्राह्मण बताते हैं । मिश्रब्रधु उन्हे कान्यकुब्ज ठहराते हैं । वार्ता ने उन्हे मनाह्य लिखा है और इसकी पुष्टि कुछ लोग विनयपत्रिका की उस पंक्ति से करते हैं जिसमे उन्हे सकुल (शुक्ल) कहा गया है जो मनाह्यो का एक गोत्र है—

दियो सुकुल जनम शरीर मुन्दर हेतु जो फल चारि को

(विनय० १३५)

जीवनी और व्यक्तित्व

कुछ लोग विनयपत्रिका की एक पंक्ति (१०६) में 'वाजपेयी' शब्द के प्रयोग के आधार पर तुलसी को वाजपेयी भी कहते हैं। स्वयं तुलसी ने अपनी जाति-पॉति के सम्बन्ध में कुछ कहने से इकार किया है—

१—मेरे जाति पाति न चाहौ काहू की जाति पॉति

२—काहू की बेटी सो बेटा न व्याह्व,

काहू की जाति रिगार न सोई

(कवितावली)

परन्तु ये पंक्तियाँ उनकी प्रौढावस्था की हैं जब वे मन्यस्त हो चुके थे। ये उनकी उम्र समय की चित्तवृत्तियों को प्रगट करती हैं। उनका शब्दार्थ नहीं लिया जा सकता।

इनकी बाल्यावस्था बड़े कष्ट में बीती। अभुक्तमूल में जन्म लेने के कारण जननी-जनक का “परिताप” हुआ। कदाचित् कुछ काल बाद उनका देहान्त भी हो गया और कवि अनाथ हो गया। तुलसी ने जो अनेक बार माता-पिता के त्याग की बात कही है वह इसी तरह समझी जा सकती है। उपर्युक्त परिस्थिति की पुष्टि में हम कवि की रचनाओं से अनेक पंक्तियों उद्धृत कर सकते हैं—

(१) मातु पिता जग जाय तजो विधिह न तिरयो कुछ भाई भलाई

(२) तनु तज्यो कुटिल कोट ज्यो तज्यो मातु पिताह

(३) जननी जनक तज्यो जनभि

(४) जायो कुलभगन बनावनो बजायो मुनि

भयो परिताप पाप जननी जनक को

ऐसी परिस्थिति में पड़ जाने के कारण उसका बाल और किशोर जीवन अत्यन्त आर्थिक तंगी में बीता और उसे पग-पग पर दरिद्रता और अपमान का सामना करना पड़ा—

- (१) वारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को
(२) द्वार द्वार दीनता कही काहि रद परि पाहू
(३) फिरयो ललान बिनु काम उदग लागि दुगउ दुखित मोहि हेरे
नाम प्रसाद लहत रमाल फल अबहो ववुर बहेरे
(४) खायो खोचा मागि म तेरो नाम लिया रे
तेरे बल बलि आजु लौ जग जागि जिया रे

बालक तुलसी ने घर-घर, मंदिर-मंदिर भीख माँगकर अपना पेट भरा। कदाचित् वह हनुमान-मन्दिरों के प्रसाद पर पलता रहा बाहुक में तुलसी हनुमान को सम्बोधित करके कहते हैं—

पालो तेरो द्रुक को ३४

द्रुकि को पर पर डोलत कैपाल बोलि

बाल ज्यो कृपाल नतपाल पालि पोगो ह २८

रामभक्त सत्तो ने (जो हनुमान-मन्दिरों में ही उन्हें मिले होंगे)
उसे सान्त्वना दी और रामाश्रित होने का उपदेश दिया—

दुखित देखि सतन कब्यो योचे जनि मन माहू

तोमै पमु पाँवर पानका परिहरे न सरन गये खुबर और निवाहू

(विनय० २७५)

इसी समय उनके दीक्षा-गुरु से उनकी भेट हुई होगी जिन्होंने सूकर-क्षेत्र में उन्हें रामकथा से बार-बार परिचित कराया—

मे पुनि निज गुरुमन सुना क्या सो सकर खेत ।

समुझा नहि तमि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३० (क)

श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि क्या राम के गूढ़ ।

किमि समझौ मै जीव जड कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ॥ ३० (ख)

तदपि कहीं गुरु पारहि बारा ।

समुक्ति परा कहु मति अनुपारा ॥

(बालकांड)

तुलसी के गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में उनके ग्रन्थों में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता । कवितावली के कुछ स्थलों से लोगों ने अर्थ निकाला है कि इनका विवाह नहीं हुआ था । परन्तु इसी ग्रन्थ में विवाह-सम्बन्धी उल्लेख भी मिलते हैं । विवाह के निषेध-रूप जो संकेत मिलते हैं वे या तो लोकोक्ति के प्रयोग हैं या मन्यासायस्था की विरक्त भावना । कदाचित् यौवन में विपद्या-भक्ति अधिक थी, परन्तु कवि समय की महिमा जानता था और अविक्त-अधिक ऊपर उठने की चेष्टा कर रहा था । कवितावली में कई स्थानों पर उस आत्यन्तिक सतप का अन्धछा चित्रण है ।

बाहुक के एक छंद में कवि लिखता है—

जातपने न भ मन रात मनमुख गयो

रामनाम लेत जागि रात टह एक हो ।

परयो तोहराति में पुनीत प्राति रागराय

मेहयस बढो तोरि नरक तराक हो ॥

(बाहुक १०)

इससे स्पष्ट है कि तुलसी ने 'लोकरीति' का पालन किया । इशारा निम्नन्देह विवाह और गृहस्थाश्रम की ओर है । जान पड़ता है तुलसीदास ने गृहस्थ-जीवन को अधिक काल तक नहीं निभाया । बचपन में ही रामभक्ति का स्वाद मिल गया था । सहानुभूति कहीं मिली ही न थी । विवाह के बाद किसी विशेष कारण से जीवन की कटुता और क्षणभंगुरता की भावना से प्रभावित हो गये । वैरागी

बन गये। वैराग्य साधन के बाद वे विशेषतया काशी में रहते थे, हॉ, कुछ दिनों के लिये दूर-दूर तीर्थयात्रा को चले जाते थे। उनकी कविताओं में चित्रकूट, वारिपुर-दिगपुर (सीतामढ़ी के पास), अयोध्या, प्रयाग और वट्टीनारायण के उल्लेख आते हैं। अवश्य ही इन स्थानों की यात्रा उन्होंने की होगी। राम के नाते चित्रकूट और अयोध्या उन्हें विशेष प्रिय रहे होंगे। जनश्रुति है कि वह ब्रज गये, परन्तु उनकी रचनाओं में इसका कोई संकेत नहीं मिलता। उनकी रचनाओं पर ब्रजभाषा और मूरदास का प्रभाव अवश्य स्पष्ट है, कितनी ही रचनाएँ मुख्यतः ब्रजभाषा में ही हैं।

रामचरितमानस की लोकप्रियता के कारण तुलसी को सम्मान मिलने लगा, ऐसा अनेक अवतरणों से सिद्ध किया जा सकता है—

रामनाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रताप ।

तुलसा ग जग मानियत महामुनि सो ॥

(कविता, उत्तर० ७२)

परन्तु विरोध भी कम नहीं हुआ होगा। पंडित-जन वगैराहों को भाषा-रूप देने का विरोधी है, सदैव रहा है, इसमें आड़ जनता से उसकी साख जाती रहती है। दोहावली में इसका स्पष्ट संकेत है—

तुलसा रघुवर-येवर्जित, खल उहत मन आखि ।

बाजराज के बालकाई लवा दिखावन आखि ॥

(१४४)

अन्य रचनाओं में भी इस ओर संकेत है—

लोग कह पाचु सो न सोच न संकोच मेरे

व्याह न बरेखा जाति-प्राति न चहत हौ

तुलसी अकाज काज राम हा के रामे खांभे

प्राति की प्रतीति मन मुदित रहत हौ

(विनय० ७६)

कोऊ कहै करत कुमाज दगावाज बडो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खव है ।
साधु जाने महासाधु खल जाग नताखल
बाना मया सार्थी कोटि उठत हबूव है

(कविता उत्तर० १०८)

उसे काशी के शिवोपासकों के दुर्दान्त विरोध का भी सामना करना पड़ा है । यह विरोध कदाचित् शिवमन्दिरो के पुजारियों ने किया हो । कदाचित् उनसे मारपीट भी की गई हो—

गँव बगल बामदेव कदहूँ न निहोरे ।
अविमानिक बाग्य भई त फिर तोरे ॥
बैगि धोखे बलि बरजिण करतूति कटोरे ।
तुलसी दल रूँ यो चहे मठ सासि मिहोरे ॥

(विनय० ८)

इस विरोध का उत्तर देकर सिद्ध हो सकता है कि रामभक्ति के प्रचार के कारण शिवमन्दिरो की पूजानिष्ठा में कमी होने लगी । वैसे तुलसी ने तो शिव को राम का सेवक, सखा, मित्र और अपना गुरु माना है । परन्तु यह भी स्पष्ट है कि तुलसी इन विरोधों के सामने अडिग रहे । उनका कहना था—

कोन का आस करे तुलसी जो पं राखिहै राम तो मारिहै कोई
(कविता, उत्तर० ४८)

तुलसीदास रघुवीर करहु बल सदा अभय काहन डरै

(विनय० १३७)

कवि ने पूर्ण वृद्धावस्था का उपयोग किया । वे बहुत दुर्बल हो गये थे । दृष्टि क्षीण हो गई थी । इसी वृद्धावस्था में जब वे काशी में

थे उन्हें कोई भयङ्कर रोग हो गया। १६७२ स० में आगरा और बनारस में प्लेग हुआ था। विद्वानों का मत है कि इस बीमारी में ग्रस्त हो गये थे, परन्तु हनुमान की कृपा से गमाश्रय हो वे स्वस्थ हो गये (कवितावली उत्तर० १७६, १८३)। इसके कुछ कालान्तर में वे बाहु-पीडा और वात कष्ट में ग्रस्त हुए निनका विशद वर्णन दोहावली, कवितावली, विनयपत्रिका और बाहक में मिलता है। पहले बाहु-पीडा हुई। उसके शमन के लिए तुलसी ने भगवान् राम शिव और हनुमान तीनों में प्रार्थना की। अन्त में इस पीडा का शमन हो गया (बाहक ३०) परन्तु उसके जाते-न-जाते कवि जिस वात रोग में फँस गया वह उसके प्राणों के साथ ही गया। दोनों बीमारियों के भिन्न भिन्न लक्षण स्पष्ट हैं—

तुलसी ननुगर सुगंजतज मृत्तम गज हर जोर
 दहन दधानिधि दीप्ये हृषि केसरा कङ्कोर
 गुजवत् फोटर गेनप्रति परमम क्रियो प्रवेश
 विहेन राजवाहन तुलसी कटिय पिट्ट प्लेश

(दोहावली)

पाँय पार, पैट पार, पाट्ट पार, मुस पौर,
 जरजर मकल शरार पीरमई है
 ताने तनु पखियत, पोर बरतोर भिय,
 फटि फटि निकमत लोन रामराय को

(कवितावली)

इस बार भी कवि ने भगवान् राम, भगवान् शिव और परम भागवत हनुमान् की शरण ली, परन्तु वह प्रार्थना करता-करता थक गया, इन देवताओं और देवों में उसका विश्वास भी शिथिल हो

गया, रोग ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उनकी एक कविता में स्पष्ट-तयः मरण-संकेत मिलता है—

पेनि सप्रेम पथान समे यत्र सोच विमोचन छेमकरा है

(कवितावली) .

अतर्मादय में वहिर्मादय का सबव जोड़कर डा० माताप्रसाद ने यह मिथ्र किया है कि काशी में आकर तुलसीदास गोमाइयो के किसी मठ में दीक्षित हो गये थे और कालांतर में स्वयं मठाधीश हो गये। जीवन के अन्तिम दिनों में जब तुलसी बाहुरोग और वान रोग से पीड़ित हुए तो उन्हें उन ऐश्वर्यों की याद आई जो उन्होंने मठा-धीश बनकर सेवन किये थे—

तुलसी गोमाई भयो भोडे दिन भूलि गयो

ताको फल पावत निदान परिपाक है

(बाहुक ४०)

इनमें अधिक अतर्मादय (तुलसी के ग्रंथ) हमारी सहायता नहीं करता।

यदि हम अब तक की सारी सामग्री को एक स्थान पर रखकर तुलसीदास के जीवन वृत्त का निर्माण करना चाहे तो उसकी रूपरेखा कुछ इस प्रकार होगी :—

तुलसीदास के पूर्व पुरुष सोरो या सूकरक्षेत्र (वर्तमान जिला एटा) के निकटवर्ती रामपुर ग्राम में निवास करते थे। यह सनाढ्य शुक्ल थे। तुलसीदास के पिता आत्माराम और जीवाराम दो भाई थे। जीवाराम के दो पुत्र थे नददास और चंद्रदास। तुलसी अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। यह नददास बल्लभ संप्रदाय के भक्त कवि नददास हैं। चंद्रदास से हम अपरिचित हैं। इनमें तुलसी सबसे बड़े थे।

तुलसीदास अभी नितान्त अबोध बालक थे कि उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनकी वृद्धा दादी ने उन्हें पाला। इन्हीं वृद्धा दादी के यहाँ रहकर तुलसी और नददास नरसिंह चौधरी की पाठ-शाला में पढ़ने लगे जो चक्रतीर्थ के समीप है। दादी का घर योग-माग में था जहाँ आजकल एक मुसलमान ग्वाला रहता है। तुलसी के गुरु नृसिंह भक्त वैष्णव थे। उन्होंने ही उन्हें रामकथा में दीक्षित किया। सूकरखेत में जिस राम-कथा के बार-बार सुनने का उल्लेख तुलसी मानस में करते हैं, वह इन्हीं नृसिंह चौधरी के मुँह से ही सुनी गई होगी। तुलसी शीघ्र ही रामभक्ति में डूब गये। वे बराबर रामनाम का उच्चारण करते थे। इसी से उन्हें 'रामबोला' भी कहते थे।

इसी समय विवाह की चर्चा चली। कवि का विवाह दीनबधु पाठक की कन्या रत्नावली से सम्पन्न हुआ। दीनबधु पाठक गगापार बदरिया ग्राम में रहते थे। विवाह के समय रत्ना केवल १२ वर्ष की कन्या थी। उसका सोलहवें वर्ष में गौना हुआ। दम्पति का जीवन बड़े सुख से बीतता था। विवाह के थोड़े दिनों बाद ही दादी का देहांत हो गया था और तुलसी आजीविका के लिए पुराण आदि कथाएँ कहते थे। कुछ दिन बाद तारापति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु वह छोटी आयु में ही काल-कलवित हो गया।

पंद्रह वर्ष के लंबे काल तक दम्पति गार्हस्थ्य-जीवन और दाम्पत्य का आनन्द लेते रहे। अब रत्ना को सत्ताईसवाँ साल लगा। इस वर्ष रत्नावली अपने पति की आज्ञा लेकर भाई के घर राखी बाँधने गई थी और तुलसी भी कहीं बाहर कथा बाँचने गये थे। ग्यारह दिन के बाद वे कथा बाँचकर घर लौटे। स्त्री के बिना घर सूना लगा। कुछ इतने बेचैन हुए कि अर्धरात्रि के समय ही बदरिया जाने की सूझी। अर्धरात्रि का समय था। आकाश काले-काले भयकर

बादलों से भरा हुआ था। आगे नदी का विस्तृत पाट था। अधेरी रात थी। परन्तु तुलसी के हृदय को लगी थी। अच्छे तैराक थे। कूद पड़े। लेन्देकर गंगा पार की और बदरिया पहुँच गये। घर जाकर दस्तक दी। साले ने दरवाजा खोला और उन्हें अन्दर बुलाकर बहान को उनके आने का समाचार दिया।

रत्नावली तुलसी की गहरी आसक्ति से परिचित थी। भाई सो गया तो वह पति के पास आई। पूछा ऐसे बेवक्त आने का कारण ? तुलसी ने कहा—तुम्हारा प्रेम। सती रत्नावली ने उसके इस प्रेमाधिक्य को गौरव और गर्व से देखा, परन्तु साथ ही उसे अपनी “अस्थि चर्म मय देह” की याद दिलाकर उच्च आध्यात्मिक प्रेमभूमि की ओर भी सकेंत किया। रत्ना सो गई परन्तु तुलसी जागते रहे। वचपन के सस्कार जाग उठे। ‘रामबोला’ चेत गया। उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा। राम के सम्मुख होकर भी वह फिर इस ‘लोक-रीति’ में क्यों पड़ गया ? आध्यात्मिक सस्कार इतने प्रबल हो उठे कि तुलसी ने रत्नावली को सोते छोड़कर विरागी भक्तों की राह ली। फिर आयु भर वह उस ओर नहीं गया।

और दुःख! सती रत्नावली ? क्या उसके ही वचनों ने कवि को गृहस्थ धर्म से विमुख नहीं बनाया था ? पतिव्रिता साध्वी रत्नावली ने इस दुःख को ही सुहाग समझा। वह पति के पदत्राण की पूजा करती रही। वह दूर से ही कवि की गति-विधि की खबर लेती और उनकी कीर्ति में आनन्द प्राप्त करती रही। एक बार कवि ने भी अपने भतीजे के हाथ उसे रामभक्ति का उपदेश भेजा। परन्तु सती रत्नावली तो पहले ही पतिरग में रँगी थी। ५० वर्ष की आयु पाकर रत्नावली सतीलोक चली गई।

रत्नावली से बिदा होकर कवि ने चित्रकूट, अयोध्या, काशी, सीतावट आदि तीर्थों की यात्राएँ की और सत्संग एवं शास्त्राध्ययन

के द्वारा अपने ज्ञान को बराबर विस्तीर्ण किया। उसकी रामभक्ति बराबर दृढ़ होती गई और राम-सम्बन्धी ज्ञान में विकास होता गया। वह बराबर कुछ न कुछ लिखता और जो कुछ वह लिखता वह राम-भक्ति और रामकथा से सम्बन्धित होता। उसका काव्य उसकी भक्ति साधना (हरिभक्ति पथ) की ही वाह्य अभिव्यक्ति है।

अयोध्या में तुलसीचौरा पर रहकर तुलसी ने मानस का प्रणयन आरम्भ किया परन्तु कदाचित् पहले दो मास के बाद उसे काशी जाना पड़ा और वह वहाँ बस गया। वह वहाँ किसी गोसाईं सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ और अपने ज्ञान बल के कारण एक दिन मठाधीश बन गया। परन्तु उसका विरोध बढ़ने लगा और अब उसका हृदय एक बार फिर अधिकार, धन और ऐश्वर्य के प्रति ग्लानिभावना से भर गया, तब उसने यह मठ भी छोड़ दिया और स्वतन्त्र रूप से रहने लगा। काशी में उसके कई मित्र थे जिनके यहाँ वह समय-समय पर रहा।

उसके समय में काशी पर तीन बड़े प्रकोप आये—महामारी (ताऊन), दुर्भिक्ष और बात रोग। अब कवि वृद्ध हो गया था। उसका सारा जीवन राममय था, रामाश्रित था, रामरूप था। अतः उसने प्रत्येक कठिनाई के समय भगवान् राम या भागवत शिव और अजनि कुमार (हनुमान्) के सिवा और किसी से सहायता की याचना नहीं की।

अतः उसकी रामकथा तीन प्रवृत्तियों पर आश्रित थी । १—राम के शील, सयम, गांभीर्य आदि श्रेष्ठ मानव-गुणों का वर्णन । २—उनके सौन्दर्य, क्रीड़ा-कैलि, हृदयहारी जीवन घटनाओं का वर्णन जिनका वीरकाव्य में कोई स्थान नहीं था । ३—उनके शौर्य का वर्णन । तुलसी के लिए तीसरी बात गौण थी पहली और दूसरी प्रधान । इसीलिए उन्होंने मुन्दरकांड और लकाकांड को उतना विस्तार नहीं दिया है जितना वाल्मीकि ने । जहाँ वाल्मीकि बालक राम के ताडका, मारीच और सुबाहु के युद्ध के विस्तृत वर्णन उपस्थित करते हैं वहाँ तुलसी इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षेप में रगवते हैं ।—

चले जात मुनि दान्हि देखाई । मुनि ताडका कोव करि बाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥

×

×

×

प्रात कहा मुनि मन रघुराई । निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ॥
होम करन लागे मुनि भारी । आपु रहे मख की रखवारी ॥
मुनि माराच निशाचर कोही । लेइ सहाय बाबा मुनिद्रोही ॥
बिनु कर बान राम तेहि मारा । मत जोजन गा मागर पारा ॥
पावकरार सुबाहु मुनि मारा । अनुज निसाचर कटक मैघारा ॥

उनके युद्ध-वर्णन भी इतने विशद, मौलिक, असमान और पुष्ट नहीं हैं जितने वाल्मीकि के इस प्रकार के वर्णन हैं । उन्होंने मानस के लकाकांड के युद्ध-प्रसंगों का किस तरह संक्षेप किया है, यह हम आगे बतायेंगे । परन्तु इन सब प्रयत्नों में तुलसी का उद्देश्य स्थिर हो जाता है । उनके राम खलमर्दन, द्विजनिर्भयकारी रावणारि अवश्य थे, परन्तु अवतार के नाते, वीर पुरुष मात्र के नाते नहीं । उनके सारे युद्धों के पीछे परार्थ काम कर रहा था । वाल्मीकि में यह

बात नहीं है। वहाँ सीताहरण के बाद का युद्ध-प्रसंग वीरनायक की हुकार है, उसकी चेतना का गर्जन है। तुलसी ने इस स्थल को एक विचित्र ढंग से निर्बल बना दिया है। उन्होंने सीता नहीं, सीता की 'छाया' का अपहरण कराया है। राम के आदेश से ही यह चमत्कार होता है। यह चमत्कार आध्यात्म रामायण में भी नहीं है। इससे जहाँ एक ओर तुलसी की भक्ति-मर्यादा की रक्षा हो जाती है, वहाँ दूसरी ओर राक्षसवध के साथ राम का स्वार्थ भी कम लिपटता है और राम केवल कोरे वीर नायक नहीं रह जाते।

वाल्मीकि के सारे पात्र उड़ड़ हैं। वे तेजवान् हैं। परिस्थितियाँ उनमें विद्रोह जगा देती हैं। सीता और कौशल्या आत्महत्या करने की धमकी देती हैं। स्वयं राम भी आत्मसम्यगी नहीं रह पाते। वीरता के साथ उड़ड़ता अवांछनीय नहीं है, परन्तु तुलसी ने लक्ष्मण को छोड़कर शेष सारे पात्रों की उड़ड़ता शान्त कर दी है जिससे लक्ष्मण का चरित्र विशिष्ट रूप ग्रहण कर सका है। मथुरा पर प्रहार करनेवाले शत्रुघ्न को सामने लाते हुए तुलसी लक्ष्मण के वैशिष्ट्य को ही दृढ़ करते हैं—

लखि रिम भरेउ लखन लघु भाई। वरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा ॥

उनके राम तो शील सौजन्य के अवतार हैं। लक्ष्मण-परशुराम-संवाद में उनके शील और सौजन्य की अत्यन्त कठिन परीक्षा हुई है और वे उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। समुद्र के प्रति क्रोध करने से पहले वे उनके सम्भलने की बड़ी प्रतीक्षा करते हैं। कथा-प्रसंग में स्थान-स्थान पर राम के शील सौजन्य के दर्शन होते हैं। यह सौजन्य कई प्रकार प्रकट हुआ है—

१—गुरुजनो के सामने

२—समान वयवालों के सामने

३—सेवको और निम्न-श्रेणी के व्यक्तियों के सामने

४—शत्रु के सामने

तुलसी राम के इस मौजन्य पर मुग्ध है। वे कहते हैं—

सुनु सीतापति मील सुभाउ
मोद नयन तन पुलक नयन जल मो नर खेहर खाउ
सिसुपन ते पितु मानु बधु गुरु मेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम विधुवदन रिमौहे सुपनेहुँ लग्यौ न काउ,
खेलत सग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ
जाति हारि चुचकारि हुलारत देत दिखावत दाउ ।
मिला साप सताप विगत भइ परमत पावन पाउ,
दई सुगति सो न हेर हर्ष दिय चरन छुए पछिताउ ॥

(विनय पत्रिका)

सारे अयोध्याकांड में राम के इस रूप के दर्शन बार-बार होते हैं—वनवास की बात सुनकर वनगमन तक और फिर चित्रकूट की सभा में। राम का यह रूप तुलसी की मौलिक कल्पना है। इस रूप में उन्होंने श्रेष्ठतम सामाजिक मनुष्य को अपने काव्य में प्रतिष्ठित किया है।

राम तुलसी के इष्टदेव है। अतः तुलसी उनके सौन्दर्य, उनकी क्रीड़ा-केलि और उनकी हृदयहारी जीवन-घटनाओं का आविष्कार करते हैं। इन घटनाओं के आविष्कार करने में उन्होंने हिन्दी कृष्ण-काव्य, भागवत और प्रसन्नराघव से विशेष सहायता ली है। इस प्रकार के मौलिक स्थल हैं राम का बचपन (कृष्ण और भागवत), पुष्पवाटिका प्रसंग (प्रसन्नराघव), स्वयंवर प्रसंग (हनुमन्नाटक), लक्ष्मण परशुराम सवाद (वही), विवाह प्रसंग और वनपथ (मौलिक)। तुलसी ने राम के सौन्दर्य को कृष्ण के सौन्दर्य के ही

सम्मुख खड़ा किया है परन्तु कृष्णकाव्य में जिस प्रकार अनेक भाँकियों के दर्शन होते हैं, उस प्रकार की अनेकता लाने का भी प्रयत्न है। इष्टदेव के नाते राम के साथ कुछ अद्भुत घटनाएँ भी जोड़ दी गई हैं (देखिए, एक बार जननी अन्हवाये) जिनका आधार भागवत की कृष्णकथा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालकांड की रामकथा को तुलसी ने वाल्मीकि में स्वतंत्र होकर भागवत के आधार पर खड़ा किया है और उसे कृष्णकथा के समकक्ष रखकर अत्यन्त हृदयग्राही और मौन्दर्यानिष्ट कर दिया है। यदि हम ध्यान में अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायगा कि तुलसी के बालकांड और अयोध्याकांड में विशेष सतर्कता, विशदता एवं मौलिकता का प्रदर्शन है और शेष कांडों की कथा में कोई मुख्य परिवर्तन न होने पर भी इन कांडों की वीथिका होने पर उनमें विशेषता आ गई है। इन कांडों में भी तुलसी ने पिछले कांडों की विशेषताओं की रक्षा की है एवं स्थल-स्थल पर इन विशेषताओं को पुष्ट किया है। यदि राम के अवतारी पुरुषवाले मदर्म हटा भी दें तो भी वे अत्यन्त सौंदर्यशील, अप्रतिम-शील-मौज्जन्य-युत वीर नायक बने ही रहते हैं।

परन्तु तुलसी राम के सम्बन्ध में निश्चित थे। वे अवश्य ही अवतारी पुरुष थे। यही नहीं, वे ब्रह्म का अवतार थे। अतएव उन्हें कथा में ऐसे प्रसंगों का भी समावेश करना था जो राम को इस रूप में प्रतिष्ठित कर सकें। इसके लिए तुलसी को कई आयोजन करने पड़े। जैसे रामकथा की भूमिकाओं को मौलिक प्रतिष्ठा, आध्यात्म रामायण के अरण्य, किष्किंधा और लंकाकांडों की सामग्री का समावेश (स्तुतियाँ, गीताएँ, राम के लिए इन्द्र का मातलि को रथ के साथ भेजना जैसे प्रसंग) और रामजन्म की परिस्थिति (देखिए भागवत और आध्यात्म)। इस प्रकार राम के सौंदर्य, शील और शौर्य से

फिर हुई रामकथा को आध्यात्म रामायण के सूत्र में पिरोया गया है। इसीसे यह भ्रम होता है कि तुलसी का आधार आध्यात्म रामायण है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। तुलसी ने रामकथा की नवीन ढंग की उद्भावना की और आध्यात्म रामायण की विशेषताओं का उसमें समावेश कर दिया जिससे उसने आध्यात्म रामायण का रूप ग्रहण कर लिया है। तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि तुलसी के मानस की गीताएँ और स्तुतियाँ आदि ठीक उन्हीं स्थानों पर होती हुई जिन स्थानों पर आध्यात्म में है विषय, विस्तार और लक्ष्य में भिन्न है। आध्यात्म में राम विष्णु के अवतार हैं, मानस में ब्रह्म के अवतार हैं। इसलिए तुलसी को कई ऐसे नवीन प्रयत्न करने पड़े हैं जो आध्यात्मकार के लिए अनावश्यक थे। (जैसे बालकांड २१७ बैठे सुर सब करहि विचारा)। मच तो यह है कि तुलसी ने रामचरितमानस की रचना का आधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रक्खा है :—(१) ब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों हैं और दोनों रूपों में अभिन्न हैं, (२) निर्गुण ब्रह्म ही विशेष कारणों से सगुण रूप धारण करता है, (३) राम सगुण ब्रह्म है, (४) सगुण ब्रह्म राम निर्गुण ब्रह्म की भाँति ही अगम्य और रहस्यमय है (५) रामनाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों से बड़ा है। कलियुग में यही सुगम और सर्वोपयोगी है।

तुलसी की कथा की विशेषता यही है कि वह एक अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक प्रश्न के उत्तर में कही गई है और उस प्रश्न का समाधान उपस्थित करती है परन्तु साथ ही वह उच्चतम धार्मिक भावना को प्रकाशित करती हुई कथानायक राम को लोकनायक वीर पुरुष एवं इष्टदेव के रूप में भी हमारे सामने रखती है और उनके चरित्र के अत्यन्त नवीन और हृदयग्राही स्थलों का उद्घाटन करती है। कथा का बीज अत्यन्त सूक्ष्म होते हुए भी उसने अपने विस्तार

मे दर्शन, धर्म, नीति और काव्य के श्रेष्ठतम स्थल उपस्थित किये हैं। जहाँ कहीं कवि ने आवश्यक समझा है, वह अपने इन स्थलों को पूर्व रचित ग्रंथों की सामग्री से पुष्ट करता है (देखिये रावण-अग्रद सवाद और हनुमन्नाटक)

तुलसी की रामकथा के सम्बन्ध में हमें एक बात और कहनी है। वह उसके आदि और अंत से संबंधित हैं। पूर्वकाव्यों की परम्परा से हटकर तुलसी ने रावण के अभ्युदय की कथा को रामजन्म की भूमिका में रख दिया है जिससे कथा का रूप सुष्ठु हो गया है। बाल्मीकि में हम रावण-वध के अन्त में ही रावण के अत्याचारों की बात जान पाते हैं। तुलसी उनकी दृढ़ भक्ति देकर ही राम को उपस्थित करते हैं। संभव है कि इसमें भी उनका आधार भागवत की कृष्ण-कथा हो अथवा स्वयं उनके कलाज्ञान ने इस दिशा की ओर इंगित किया हो। जो हो, इस मौलिकता ने कथा को कलात्मक बना दिया है। तुलसी की कथा का अन्त भी मौलिक है। वह कथा को खुला हुआ छोड़कर श्रेष्ठ कलाकार बन जाते हैं। उनकी धार्मिक भावना उन्हें एक विशेष दिशा में परिचालित कर रही है। (१) राम उनके इष्टदेव हैं। इनका निधन उन्हें अप्रिय विषय रहता (२) वे सीता के द्वितीय वनवास की कथा लिखकर राम को लक्षित करना नहीं चाहते। इसी से वे राम और सीता का आदर्श कुटुम्ब दिखा कर परंपरा के विरुद्ध राजगृह में ही लवकुश का जन्म बता, राम को अयोध्या के बाहर एक आराम में छोड़ मानस की कथा का पटाक्षेप कर देते हैं।

परन्तु अभी तुलसी की रामकथा को हमें दो और दृष्टिकोणों से देखना है। उन दोनों का सम्बन्ध स्वयं कथा से नहीं है, परन्तु उस वीथिका से है जिसमें कथा रखी गई है। यह वीथिका कथा को नया अर्थ देती है। पहली वीथिका है रामभक्ति। सारी कथा बीज

रूप से रामभक्ति पर अंकित है और विस्तार में प्रत्येक पात्र रामभक्त है। राम सगुण ब्रह्म है परन्तु साथ ही उनका हमसे भक्ति का सम्बन्ध हो सकता है, यही कवि का ध्येय है। अपने इस उत्साह में उसने भक्ति को ज्ञान वैराग्य से उच्च प्रतिष्ठित किया है, भक्तों की महिमा गाई है और प्रत्येक पात्र को रामभक्त बना दिया है। एक अत्यन्त उच्च कोटि की भक्तिसारे काव्य को ओत-प्रोत कर रही है और उसने रामकथा को भक्तकी प्रेम पुकार बना दिया है। दूसरी वीथिक कागभुशुण्डि गरुड़-प्रसंग में दी गई है जिससे रामकथा को अपूर्व विस्तार मिल जाता है (उत्तर ११९-१२३)। वह केवल किसी एक युग के एक दाशरथि राम की कथा नहीं रह जाती। वह इतनी ही विशद, नानात्वपूर्ण और रहस्यमयी हो जाती है जितने स्वयं राम है।

तुलसी के उत्तरकांड (मानस) में विशेष रामकथा नहीं है। केवल १-१३ तक रामकथा है। शेष कांड रामकथा में परोक्ष रूप से ही संबंधित है। उसका लक्ष्य दार्शनिक और धार्मिक समस्याओं का निरूपण है। यद्यपि उसका रूप बहुत कुछ कथात्मक है।

तुलसी की मानसातगत रामकथा के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख चुके, परन्तु इस कथा का भूमिकाये भी महत्त्वपूर्ण है। वे भी कथात्मक हैं। ये भूमिकाये हैं (१) उमाचरित, (२) शम्भुचरित, (३) नारद मोह की कथा, (४) स्वयंभू और सतरूपा की कथा, (५) जलधर की कथा, (६) प्रतापभानु की कथा। पहली दो भूमिकाओं से रामकथा का केवल परोक्ष का सम्बन्ध है। तुलसी ने उन्हें विचित्ररूप से मुख्य कथा में गूँथ दिया है। इनका आधार पद्मपुराण, शिवपुराण और कुमारसम्भव है। शेष कथाये रामावतार के कारण बताती हैं जैसे नारद का श्राप, स्वयंभू मनु और सतरूपा को वरदान, जलधर की स्त्री का श्राप और रावण के जन्म

की भूमिका (प्रतापभानु की कथा) । परिशिष्ट में कागभुशुण्डि की कथा है जिसमें ज्ञान-विज्ञान प्रकरण को खोलने की चेष्टा की गई है और राम के ऐश्वर्य का चित्रण है ।

परन्तु कथा को हम एक दूसरे दृष्टिकोण में भी देख सकते हैं । वह मुख्य कथा के साथ कुछ भागवतों की भी कथा है । ये भागवत हैं उमा, शमु, नारद (बालकांड), भरत (अयोध्या का० उत्तरार्द्ध), हनुमान (सुन्दर का०), कागभुशुण्डि (उत्तर का०) । इन सभी में रामभक्ति की पराकाष्ठा होना मित्र किया गया है । जो तो, राम-चरितमानस लिखते समय तुलसी की दृष्टि इन भागवतों के चरित्र की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुई थी । उन्होंने इन्हे अत्यन्त आकर्षक रूप में विस्तारपूर्वक हमारे सामने उपस्थित किया है ।

विनय पत्रिका के कुछ पदों में तुलसी ने रामकथा में सांगोपांग आध्यात्मिक अर्थ लगाने की चेष्टा की है—

मोह दश मोलि तदध्रान्त अहकार

पर कारिजित काम विश्रामहारा

लोभ अतिकाम मत्सर महोदर दुष्ट,

क्रोध पापिष्ठ विबुधान्तकारी

द्वेप दुर्मुख दम्भ खर, अकम्पन कपट

दर्प मनुजाद, मद शल पाना

अमित बल परम दुर्जय, निशाचर निकर

महित पटवर्ग गो जातुधाना

जीव भवदग्नि-मेवक विभीषण बसत

मन्य दुष्टाटवी प्रसित चिन्ता

नियम यम सकल मुरलोक लोकेश

लकेश-वस नाथ अत्यन्त भीता (पद ५८)

उपल वर्णन गरजन तरजि डारन कुलिस कठोर ।
 चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥
 पवि वाहन दामिनि गरज भरि मकौर खरि खाभि ।
 रोवन प्रीतम दोष लखि तुलसी रामहि सीभि ॥
 मान राखिवो मागिवो पिय सो नित नव नेहु ।
 तुलसी तीनिउ तव फवै जो चातक मत लेहु ॥
 तुलसी चातक ही फवै मान राखिवो प्रेम ।
 वक् बुन्द लखि स्वातिह निदर निवाहत नेम ॥
 तुलसी चातक मागिवो एक एक घन दानि ।
 दन जो भ भाजन भरत लेत जो घट्टक पानि ॥
 चातक जावन दाम कहि जीवन समय कुराति ।
 तुलसी अलख न लखि परे चातक प्राति प्रताति ॥
 प्रेम न परखिप्र परषपन पयद सिखावन गह ।
 जग कह चातक पातकी ऊसर वरमै नेह ॥
 चरग चचु गत चातकहि नेम प्रेम की पार ।
 तुलसा परवस हाड पर परिहै पुटुभी कीर ॥
 जिअत न नाई नारि पातक घन तजि दूसरहि ।
 मुरमरिह को वारि मरत न साँगेउ अरघ जल ॥
 तुलसा के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस ।
 विअत स्वाति जल जान जग जाचत बारह मास ॥

(दोहावली)

धर्म और दर्शन

तुलसी कवि ही नहीं थे। वे महान धार्मिक नेता थे। उत्कृष्ट तत्त्ववेत्ता थे। प्राचीन परिभाषा में हम उन्हें ऋषि कह सकते हैं। उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को पहचाना था और परम्परागत दार्शनिक मतवादों का गहरा अध्ययन किया था। उनका काव्य धर्म और दर्शन से पुष्ट है और उनकी रचनाओं में धर्म और दर्शन के महान् सिद्धान्तों को काव्य का रूप मिला है।

धर्म वह है जो धारण करता है—जो सामाजिक स्थिति को बनाय रखता है। इस प्रकार स्वयं धर्म शब्द में उच्छृङ्खलता का निरोध है और मर्यादा का संदेश है। तुलसी का धर्म रामभक्ति है परन्तु इस रामभक्ति को समझने में पहले हमें तुलसी के राम की परिभाषा समझ लेनी होगी। तुलसी के राम मर्यादा-पुरुषोत्तम है। तुलसी के इस आदर्श में ही श्रेष्ठ सामाजिक भाव मन्निहित है। राम के महान् मर्यादापूर्ण चरित्र को सामने रखकर तुलसी ने अपने युग के धर्म को उच्च धरातल पर उठाने की चेष्टा की है। उनके समय में समाज की स्थिति इस प्रकार थी—

बरन धर्म नहि आश्रमचारी । धृति विरोध रत सब नर नारी ॥
 द्विज धृति बेचक भप प्रजासन । कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥
 मारग मोह जो कहूँ जोइ भावा । पड़ित मोइ जो गाल बजावा ॥
 मियारम्भ दभ रत जोई । ता कहूँ सत कहइ सब कोई ॥

सोइ सयान सो परवनहारा । जो कर दभ सो बड अधिकारी ॥
जो कह कूट मगखरी नाना । कलियुग सोइ गुनवत बखाना ॥
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कलियुग सोइ ग्याना सो बिरागी ॥
जाके नख अरु जटा विशाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ वेष भषन वरे भच्छामच्छ जे खाहि ।
तेड जोगा तड सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहि ॥

(३० ९८ क)

जे अपकारा चार तिहि कर गोरव मान्य तेड ।
सन क्रम वचन लवार, तेड बकता कलिकाल मेह ॥

(९८ ग्व)

नारि विवस नर सकल गोसाई । नाचहि नर मकैट का नाई ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधा । देव विप्र श्रुति मत विरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहि नारि परपुष्प अभागी ॥
माभागिनी विभूषनि हाना । विववन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुर मिख प्रविर अव का लेखा । एक न सुनइ एक नहि देखा ॥
मातु पिता बालकहि बोलावहि । उदर भर सोइ बर्म मिखावहि ॥

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर कहाहि न दूसर वान ।
कौंडो लागि लाभ बस, कहाहि विप्र गुरु घान ॥
बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहि डारि ॥

(९९ ख)

परत्रिय लपट कपट समाने । मोह द्रोह समता लपटाने ॥
 तेइ अभेदवादा ग्याना नर । देखा मे चरित्र कलियुग कर ॥
 आपु गए अरु तिन्हहु धालहि । जे कहु सन मारग प्रतिपालहि ॥
 कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहि जे दूषहि श्रुति करि तरका ॥
 जे बर नाधम तेलि कुम्हारा । स्वयच किरात कोल कलवारा ॥
 नारि मुई गृह सम्पति नामा । मूड मुडाड भये सन्यासा ॥
 ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहि । उभयलोक निज हाथ नसावहि ॥
 विप्र निरच्छर लोलुप कामा । निराचार सठ वृपला स्वामा ॥
 सूद्र कराह जप तप व्रत नाना । बाँठि बरामन कहहि पुराना ॥
 सब नर कलियत कराहि अचारा । जाट न बरनि अनानि अपारा ॥
 भये बरत सकर कानि, भिन्न भेनु मय लोग ।
 कराहि पाप पावहि दुख भय रुज मोरु वियोग ॥

(१०० क)

श्रुतिममत हरि भक्ति पथ सजुत बिरति विवेक ।
 ताह न चर्ताहि नर माह बस कर्पाहि पथ अनैक ॥

(१०० ख)

इस अमर्यादित जीवन के सम्मुख तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित रखा । पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते समय हमने तुलसी की मर्यादा-भावना पर ही प्रकाश डाला है ।

धर्म के ३ पहलू हैं—पारलौकिक, सामाजिक और वैयक्तिक । तुलसी को इन तीनों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना है । श्रेष्ठतम पारलौकिक स्थिति का नाम मोक्ष है और तुलसी ने मानस लिखते समय मोक्ष को ही अपना ध्यय रखा है । परन्तु लोक में देह धारण करते हुए ध्यय हो जाता है ससार के दुःखों का निराकरण अथवा

शान्ति जिसे तुलसी स्वयम् “विश्राम” (उत्तर २२३) कहते हैं । लोक में शान्ति और परलोक में मोक्ष का निर्वानपद । मानस की समाप्ति पर तुलसी इसी उच्च आध्यात्मिक विकास को सामने रखते हैं—

पुण्य पापहर मदा शिवकर विज्ञानभक्तिप्रद ।

मायासोढमलापह मुविमल प्रेमावुप्स शुभम् ॥

श्रामद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्याव गाहन्ति ये ।

ते मयारपतगघोरस्फिरणदेव्यनि नो मानवा ॥

वास्तव में रामभक्ति और आध्यात्मिक शान्ति पर्यायवाची शब्द हैं । रामभक्ति में आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति होती है और इसे पाकर रामभक्त को रामभक्ति (रामपदनेह) के सिवा और किसी भी वस्तु में बाधा नहीं होती । वह मुक्ति का भी हेय समझता है । इसी में तुलसी स्वयं रामभक्ति की याचना करते हैं (देखिये विनयपत्रिका) और मानस में राम से मिलनेवाला प्रत्येक व्यक्ति देह रहते हुए रामभक्ति और मृत्यु के बाद साकेतवास की प्रार्थना करता है ।

यदि तुलसी के धर्म का आध्यात्मिक पहलू रामभक्ति है तो हमें उसके सम्बन्ध में विशद वर्णन मिलेगा । सारा मानस रामभक्ति से ओत-प्रोत है, परन्तु विशेष स्थलों में उन्होंने रामभक्ति के साधनों को विस्तारपूर्वक उपस्थित किया है । अरण्यकांड में भक्तियोंग और नवधा भक्ति प्रसंगों में भक्ति के साधन बताये गये हैं । उत्तरकांड में तुलसी ने स्वयं राम के मुख्य से भक्तिपथ की व्याख्या कराई है ।

सामाजिक आदर्श के रूप में राम के चरित्र को खड़ा किया गया है । मानस में एक आदर्श कुटुम्ब और एक आदर्श समाज को प्रतिष्ठित किया गया है । पिता-माता, पुत्र, पुत्रदधू, पत्नी भृत्य भ्राता, पुरजन, परिजन—सबको लेकर ही तुलसी चलते हैं । उन्होंने

राम के मर्यादाभाव में और शील-सौजन्य में धर्म के सामाजिक पहलू को आगे बढ़ाया है ।

परन्तु वे यही नहीं रुक जाते । धर्म तो अधिकतर वैयक्तिक साधना ही है । इसीलिये तुलसी व्यक्ति की साधना, व्यक्ति के परिष्कार पर विशेष बल देते हैं । आदर्श व्यक्ति के रूप में उन्होंने सत की कल्पना की है—

पट विकार जित अनघ अक्राम । अचल अकिंचन मुनि मुखवास ॥
अमित ब्रह्म अनाद भित भोगा । सव्यसार कवि कोविद जोगा ॥
सावधान सानंद मदहाना । वीर वर्मगति परम प्रबाना ॥

गुनागार ससार दुख रहित विगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहूँ देह न गेह ॥ ४५

निज गुन अपन मुनत सकुचाना । पर गुन मुनत अविह हरषादा ॥
मम सातल नहि व्यागहि नीता । बात सुभाउ सबहि मन प्राणी ॥
जप तप व्रत दम सजम नभा । गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ॥
ब्रह्मा क्षमा मयत्री दाया । मुदित मम पद प्रीति असाया ॥
प्रियति विवेक विनय विग्याना । प्रेय जगद्य वेद पुराना ॥
दम मान मद करहि न काऊ । भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥
गार्वह मुनहि सदा ममलाला । हेतु रहित पर हित रत लीला ॥

(अरण्य)

विषय अलपट भाल गुनाकर । परदुख दुख मुख मुख देखे पर ॥
सन अमतरिपु विमद विरार्गी । लोभामरष हरष भय व्यागी ॥
बोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगति असाया ॥
सर्गहि मानप्रद आपु अमाना । भरत प्रानसम मम ते प्राणी ॥

विगत काम मम नाम परायण । माति विरति विनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
॥ मय लच्छन वर्गहि जामु उर । जानेहु तात मन मनन फूर ॥
मम दम नियम नाति नहि डोलहि । परुष वचन कवहुं नहि बोलहि ॥

निन्दा अस्तुति उभय मम ममता मम पदकज ।

ने मज्जन मम प्रानप्रिय गुनमदिर मुखपुत्र ॥ ३८ ॥

(उत्तरकांड)

उन्होंने 'धर्मरथ' के रूपक के द्वारा श्रेष्ठ वैयक्तिक गुणों के समग्र
का उपदेश दिया है—

मुनहु सखा कह कृपानिवाना । जेहि जय होइ सो स्यदन आना ॥
गौरज वारज तेहि रथ चाका । मय्य साल दृढ बाजा पताका ॥
बल विवेक दम परहित धोरे । जमा कृपा समता रजु जारे ॥
ईष भजनु सारथी मुजाना । विरति चर्म मनोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचटा । वर विभ्यान कठिन को दडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । मम जम नियम मिला मुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । गहि मम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अय रथ जाके । जानन कहे न कतहु रिपु ताके ॥

(लकाकांड ८० क)

वास्तव में उन्होंने धर्म के तीनों विभागों में आश्चर्यजनक सामञ्जस्य
उपस्थित कर दिया है । उन्होंने धर्म को व्यक्ति के प्रतिदिन के कार्य-
क्रम के भीतर से देखा है और उसे केवल परलोकचिन्ता तक ही
सीमित नहीं किया है । उनका उद्देश्य इसी जीवन में विश्राम
(आध्यात्मिक शांति) प्राप्त करना है । इसके लिये पहले श्रेष्ठ वैयक्तिक

एवं सामाजिक गुणों का सग्रह हो जाना चाहिए । यही रामभक्ति की पहली सीढ़ियाँ हैं । इन्हीं से होकर हम सच्चे अर्थों में धर्मनिष्ठ हो सकते हैं । परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि तुलसी की परिभाषा में हम धर्मनिष्ठा को रामनिष्ठा कहेंगे । स्वयं तुलसी की रामनिष्ठ धर्म-भावना में बराबर विकास होता गया है । तुलसी राम के गुणगान और कथा-कीर्तन (सगुण परब्रह्म राम की भक्ति) में आरम्भ करते हैं और रामनाम की साधना (निगुण परब्रह्म राम का नामस्मरण) में होते हुए मानसिक प्रज्ञा तक पहुँचते हैं । विनयपत्रिका के एक पद में इस मानसिक पूजा का रूप इस प्रकार स्फुटित हुआ है—

ऐसा आरता राम रघुवार का करहि मन ।

हरन दुख द्वन्द्व गोविन्द आनन्दधन ॥

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा

वसत इति वासना श्रुप दीज ।

दीपु निज बोधु गत कोट-मद मोह तम

प्राढ अभिमान चित्तवृत्ति छाज ॥

मख अतिग बिगद प्रवर नेवद्य सुभ

आ रमण परम सतोपकारा ।

प्रेम ताबल गत मल समय सकल

विपुल भव वासना बाजहारा ॥

असुभ-सुभ कर्म-धृत प्रण दम वर्तिका

त्याग पावक, सतोपगुन प्रकास ।

भक्ति वेंराग्य ।

अर्थि नीराजन जग निवारा ॥

विमल हृदि भवन कृत सगति परजकसुभ

सयन विश्राम श्री राम रामा ।

छमा करुना अमुख तत्र परिचारिका
 जत्र हरि तत्र नहि भेद, माया ॥
 आरती-निरत सनकादि, श्रुति मेघु सिव,
 देवरिषि अखिल मुनि तत्त्वदर्मा ।
 करं सोइ तरै परिहर कामादि भले
 बर्दति इति अमलमति दाम तुलसी ॥

धर्म और दर्शन का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। राम-भक्ति धर्म को उपस्थित करते हुए तुलसी को प्रसगतः इस सम्बन्ध में भी विचार करना पड़ा है। दर्शन के अनेक विषय हैं, परन्तु तुलसी केवल मुख्य विषयों को लेकर ही चले हैं। ये मुख्य विषय हैं—१ जीव, माया और ईश्वर की परिभाषाएँ और इन तीनों का सम्बन्ध, २ ससार की स्थिति के सम्बन्ध में मत ३ विशुद्ध ज्ञान और उसकी प्राप्ति के साधन ।

तुलसी सगुण दाशरथि राम और निर्गुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं मानते। उनका दृष्टिकोण ठीक भागवत जैसा है जिसके अवतीर्ण कृष्ण निर्गुण ब्रह्म ही है। मानस का सारा ढाँचा परात्पर ब्रह्म और दाशरथि राम में एकात्म स्थापित करने के लिए ही खड़ा किया गया है। सती को भ्रम है—

ब्रह्म जो निर्गुण विरज अज, व्यापक अखिल अभेद ।
 सो कि देह धर होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥

इसीलिए जहाँ अध्यात्म रामायण में पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मा विष्णु-धाम पहुँचते हैं, वहाँ तुलसी शिवद्वारा तर्क उपस्थित करते हैं—

बैठे सुर सब करहि विचारा । कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा ॥
 पुर बैकुण्ठ जान कहँ कोई । कोइ कह पयनिधि महुँ बसु सोई ॥
 जाके हृदय भक्ति जम प्राती । प्रभु तेहि प्रगट सदा यह रीती ॥
 तेहि समाज गिरिजा मै रहेऊँ । अवसर पाय वचन इक कहेऊँ ॥
 हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहि मै जाना ॥
 देशकाल दिशि विदिशिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
 अग जगमय सब रहित विरागी । पवन ते प्रकट होहि जिमि आगी ॥
 मोर वचन सब के मन माना । साधु-साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

तुलसी को यह परिवर्तन इसलिये ही करना पडा है कि उन्होंने राम को विष्णु का अवतार नहीं माना है, जैसा अध्यात्म मे है, वरन् परात्पर ब्रह्म का अवतार माना है, जो सर्वव्यापक है, किसी विशिष्ट लोक मे निवास नहीं करता ।

परात्पर ब्रह्म और दाशरथि राम के सम्बन्ध को तुलसी ने पग-पग पर स्पष्ट कर दिया है । उत्तरकांड मे वे कहते है—

व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनन्ता । अखित अमोघ एक भगवन्ता ॥
 सोइ सच्चिदानन्द प्रनय्यामा । अज विज्ञानरूप गुणधामा ॥
 अगुण अदम्य गिरा गोताता । समदर्शा अनवद्य अजीता ॥
 निगुण निराकार निर्मोहा । नित्य निरजन मुख सन्दोहा ॥
 प्रकृति पार प्रभु सब उरवार्मा । ब्रह्म निराह विरज अविनामी ॥
 उहाँ मोह कर कारण नाहीं । रवि सम्मुख तम कबहुँ न जाहीं ॥

भक्त हेतु भगवान प्रभु, राम बरेउ तनु भूप ।
 किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥
 यथा अनेक भेष धरि नृत्य करै नट कोय ।
 जोइ सोइ भाव देखावै, आपु न होइ न सोय ॥

परन्तु दाशरथि राम ब्रह्म से कम ऐश्वर्यशील नहीं है। कौशल्या, मंदोदरी और कागभुशुण्डि के विराट्-रूप-दर्शन-प्रकाशन सम्बन्धी स्थलो में राम का आमत ऐश्वर्य प्रगट हुआ है। दाशरथि राम के रूप में भी राम चिरलीलामय, अनन्त, चिर-एक है। उस रूप में भी वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ऊपर है, उनके आगन्ध्य है—

उदर माता मुन अगडज राया । देखेडे बहु ब्रह्मागड निकाराया ॥
अति विचित्र तहे लोक अनेका । रचना अविक एक ते एका ॥
कोटिन चतुरानन गाराशा । अगणित उदुगण राव रजनाशा ॥
अगणित लोकपाल यम काला । अगणित भवर भूमि विमाला ॥
मागर सरि सर विपिन अपारा । नाना भाति सृष्टि विमलारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर । चारि प्रकार जाव सचराचर ॥

एक एक ब्रह्मागड महै रहेडे वर्ष शत एक ।

इहि विवि देखत फिरडे म अगड कटाह अनेक ॥

(उत्तरकांड ८० (ख))

लोक-लोक प्रति भिन्न विधाता । भिन्न विष्णु शिव मनु दिग्मित्राता ॥
नर गधव भत बत्ताला । किन्नर निशिचर पशु रम व्याला ॥
देव दनुज गण नाना जाता । सकल जाव तहे आनहि भार्ता ॥
महि सर मागर सरि गिरि नाना । सब प्रपच तहे आनहि आना ॥
अगडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेडे जिनग अनेक अनूपा ॥
अवधपुरा प्रति भुवन निहारा । सरयू भिन्न भिन्न नर नारी ॥
दशरथ कौशल्या सुन ताता । विविध रूप भरतादिक आता ॥
प्रति ब्रह्मागड राम अवतारा । देखेडे बालविनोद अपारा ॥

भिन्न भिन्न मै दीख सबु, अति विचित्र हरिजान ।

अगणित भुवन फिरेडे प्रभु राम न देखेडे आन ॥

(उत्तरकांड ८१ (क))

सोइ भिखुपन सोइ सोभा सोइ कृपालु खुबीर ।

भुवन-भुवन देखत भिरउँ, प्रेरित मोह समीर ॥

(उत्तरकांड ८१ (ख))

शिव दाशरथि राम के भक्त है । ब्रह्मा, विष्णु, वेद ऋषि, देवता उनकी स्तुति करते हैं । उनकी शक्ति की सीमा नहीं । त्रिलोकी में कहाँ भी उनसे बचकर जाया नहीं जा सकता (देखिये कागभुगुण्डि-प्रसंग) । इस प्रकार वे परात्पर ब्रह्म में कम रहस्यमय नहीं । उनके चरित्र को तुलसी बार-बार रहस्य या “गुप्त” कहते हैं । जब यह दाशरथि राम इस लोक में लीला नहीं करते होते तब वे माकेतधाम में निवास करते हैं । इन माकेतवासी राम और दाशरथि राम में रूप-गुण किसी बात का अन्तर नहीं ।

तुलसी ब्रह्म और जीव में अभेदत्व के पोषक हैं । लक्ष्मण-गीता में इस भेद में अभेद की समस्या को स्वयं राम माया के अस्तित्व द्वारा सुलझाते हैं । जीव ब्रह्म हैं परन्तु माया के कारण वह यह बात नहीं जान पाता । जीव माया के वश में हैं । ब्रह्म मायाप्रेरक है, माया का स्वामी है ।

माया ईश न आपु कहै जान कटिय गो जीव ।

बच मोक्षप्रद सर्वपर माया प्रेरक भाव ॥

यहाँ तक अद्वैत है । परन्तु जहाँ अद्वैतवादी माया को भ्रममात्र मानते हैं, उसकी केवल व्यावहारिक सत्ता को मानते हैं, पारमार्थिक सत्ता को नहीं, उस प्रकार तुलसी नहीं मानते । तुलसी माया के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं—

मे अम मोर तोर है माया । जेहि वश कीन्हे जीव निकाया ॥

(भेद-स्थापन माया का गुण है)

गो गोचर जहँ लगी मन जाई । मोड़ सब माया जानेहु भाई ॥

(प्रकृति माया है)

तेहि कर भेद मुनहु तुम मोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥

एक पुष्ट अतिमय दुखरूपा । जा वश जीव परा भवकृपा ॥

एक रचे जग गगन वश जाके । प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके ॥

(माया के दो रूप हैं विद्या और अविद्या । विद्या तत्त्वों का वह विकार है जिसने गुण-युक्त समार की रचना की । अविद्या मन का विकार है जो जीव को सामागिकता में फँसाये रखता है ।) ब्रह्म-विद्या माया को प्रेरित करके उस गुणात्मक समार की रचना कराता है जो मनुष्यमात्र को देशकाल बधन में बाँधता है । अविद्या माया के अंग हैं—१ मोह, २ काम, ३ कृष्ण ४ क्रोध ५ लोभ, ६ श्रीमद, ७ ममता, ८ मत्सर, ९ शोक, १० विन्ता ११ मनोरथ, १२ सुत-वित-नारी-ईर्ष्या ।

यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अभित का बरने पारा ।

शिव चतुरानन देखि डेराही । अपर जीव केहि लेखे नाही ॥

व्यापि रह्यो समार सहुँ माया कटक पनड ।

मेनापति कामादि मट दम्भ कपट पाषण्ड ॥ ७१ (क) ॥

मो दार्मी रघुवीर के समुझे मिया गोपि ।

बुटै न रामकृपा विनु, नाच कहउँ पद रोपि ॥ ७१ (ख) ॥

मो माया सब जगहि नचावा । जामु चरित लखि काहु न पावा ॥

मोड़ प्रभु भ्र विलास खगराजा । नाच नटी द्व सहित समाजा ॥

(उत्तरकांड)

वास्तव में तुलसीदास ब्रह्म, जीव और माया की समस्त परिभाषाओं को अपूर्ण समझकर आपेक्षिक परिभाषाएँ देते हैं—

माया ईश न आपु कहै जान कहिय सो जाव । (जाव)

बव मोक्षप्रद सबपर माया प्रेरक माव ॥ (ब्रह्म)

सो माया सय जगहि नचावा ।

जामु चरित लखिहाहु न पावा ॥ (माया)

इस प्रकार वे माया और जीव के सम्बन्ध में ब्रह्म को स्पष्ट करने में सफल हो सके हैं । अद्वैतवादी जहाँ माया को भेद-बुद्धि उत्पन्न करनेवाला जीव ब्रह्म और प्रकृति के एकता पर आवरण मात्र मानते हैं जो स्वयम् असत्य या भ्रम हैं वहाँ तुलसीदास माया को मन का भ्रम या असत्य आवरण मात्र नहीं कहते । माया सत्य है वह 'सियाराम और 'सब जग की एकता के सम्बन्ध में उपासक को भ्रात कर देती है । यह कुबुद्धि है । अविद्या है । माया-सम्भव-भ्रम के कारण ही मनुष्य ब्रह्म (राम) की शक्तियों को सीमित समझता है । भगवत्कृपा से इस भ्रम का नाश होने पर अभेद-बुद्धि उत्पन्न होती है जो अततः अद्वैत स्थिति को जन्म देती है । तुलसी ने लिखा भी है—

• • • माया सम्भव भ्रम सब अव न व्यापिहहि तोहि ।

जानेगु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥

•

(उत्तरकांड)

अभेद-भक्ति का फल है मोक्ष । परन्तु तुलसी अभेद-शक्ति से भेद-भक्ति को बड़ा मानते हैं जिसका फल स्वयम् अभेद-भक्ति है—

ताते उमा मोच्छ नहि पायो । दमरय भेद भगनि मन लायो ॥
सागुनोपायक मोच्छ न लेही निन्द कहूँ राम भगनि निज देखी ॥

(अयोध्याकांड)

तुलसी ज्ञान को मोक्षप्रद मानते हैं । (ज्ञान मोक्षप्रद वेद ब्रह्माना—
उत्तरकांड) और ज्ञानाश्रयी भक्ति या अभेदभक्ति से भक्त भगवान्
में लीन होकर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है—

तजि जोग पावक देख हरिपद लान यह जग नहि फिरे ।

परन्तु भेद-भक्ति के अन्त में सांनिध्य प्राप्त होता है—

ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहि भेद भगनि उर लयऊ ॥

जीव-ब्रह्म के अभेद के सम्बन्ध में तुलसी अद्वैती है—

सो ते ताहि ताहि नहि भेदा । बारि वारि इव गावहि वदा ॥

यह पारमार्थिक स्थिति है । व्यवहार में सायाजन्य भेद हो
जाता है—

परबस जाव स्वयस भगवता । जाव अनेक एक श्रीकृता ॥
मुधा भेद जयपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

इस भेद का बोध है हरिकृपा ।

ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध में भी तुलसी अद्वैती है—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिल ब्रह्मादि देवासुरा ।
यत्सत्त्वाद् मृषैवभाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रम ॥

(रस्सी में साँप का भ्रम—इससे स्पष्ट है कि यह जगत् ब्रह्म, सत्य है. यह जो जगत् जान पड़ता है सो मिथ्या है)

रजत मीप महै भाम जिमि जया भानुकर वारि ।

जदपि मृषा तिहुँ काल महै, भ्रम न सकइ कोइ टारि ॥

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥

जो अपने गिर काटै कोई । जिन जागे न हरि दुख होई ॥

और

मटेउ सत्य जाहि विनु जाने । निसि भुजग विनु रजु पहिचाने ॥

जेहि जाने जग जाउ हराई । जागे जया सपन भ्रम जाई ॥

यह है ब्रह्म और जगत् का परम्पर सम्बन्ध । ज्ञान से—जागने से—सपने का भ्रम दूर हो जाता है और हम सच्ची वस्तुस्थिति से परिचित होते हैं । परन्तु यह ज्ञान पांडित्य द्वारा प्राप्त नहीं होता । यह ज्ञान तो जीव ब्रह्म और प्रकृति के अभेदत्व का आत्मानुभव है । भगवान् हो चाहें तो इस प्रकार का आत्मानुभव हो सकता है—

मोह जाने जाह देहु जनार्द । जानत तुम्हहि तुम्हट हाइ जाई ॥

तुम्हरि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन । जानहि भगत भगत उरचन्दन ॥

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी ने मूलतः शंकराद्वैत को ही स्वीकार किया है परन्तु कई दृष्टिकोणों में वे फिर भी उसमें भिन्न हो जाते हैं :—

१. तुलसी माया को भ्रम मात्र नहीं मानते । वे उसकी सत्ता को यथाथ समझते हैं । माया का अस्तित्व है । वह भगवान् की

शक्ति है। उन द्वारा ही प्रेरित होती है। उनके वश में है। शकराद्वैत में माया की सत्ता भ्रममूलक है। ब्रह्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

२. तुलसी जगत् की स्थिति को व्यावहारिक सत्य नहीं मानते, न जीव-ईश्वर के भेद को व्यावहारिक सत्य मानते हैं। यह तो भेद-बुद्धि है ही जो मायाजन्य है। यह भेद-बुद्धि सत्य है, भ्रम नहीं।

३. तुलसी ज्ञान में इस भेद-बुद्धि का नाश उसी तरह मानते हैं जिस तरह शकर ज्ञान में व्यावहारिक दशा का बोध होकर मोक्ष प्राप्ति को स्वीकार करते हैं। परन्तु वे ज्ञान को ब्रह्म की अनुकम्पा में जोड़ देते हैं। जीव के कुछ करने-धरने में यह 'ज्ञान' नहीं मिलता। यह तो आत्मानुभव है जो ईश्वर की कृपा के बिना असम्भव है। इस प्रकार तुलसी का यह ज्ञान शकर के 'ज्ञान' से भिन्न है। यद्यपि फल दोनों का मोक्ष है।

४. यह "ज्ञान" हो जाने पर भी कि मारा जगत् "मियाराम-मय" है, तुलसी साधना के लिए उपासक-उपास्य और सेवक-सेव्य की भेदबुद्धि को ही स्वीकार करते हैं जिसका अंत होता है "भेद-भक्ति" में (जिसमें सामुज्य की नहीं, सामन्त्रिय अविरल भक्ति की ही प्राप्ति होती है)। तुलसी इस "अविरल रामभक्ति" को "मोच्छ" से अधिक अच्छी स्थिति मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी शकर के "विवर्तवाद" को पूर्णतः स्वीकार नहीं करते। माया जितनी सत्य है, उतना जगत् भी सत्य है। यह सत्यता भेदबुद्धि के कारण है जो मायाजन्य है। भेद-

बुद्धि के दूर होने पर जगत् और ब्रह्म एक हो जाते हैं। परन्तु भेद-बुद्धि का सर्वथा नाश असंभव है। अतः जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में इतनी भेद-बुद्धि बनी रहे कि उपासक-उपास्य का नाता जोड़ा जा सके तो तुलसी को कुछ कहना नहीं है। इतनी भेदबुद्धि से उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सहायता ही मिलेगी। इस प्रकार उनके लिए उपास्य-उपासक का सम्बन्ध व्यावहारिक दशा का सम्बन्ध नहीं है, जीव ब्रह्म का अन्तिम बाध्यनीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिकोण के कारण जहाँ अद्वैतवादी ज्ञान को श्रेय देते हैं वहाँ तुलसी ज्ञान को स्वतन्त्र पथ नहीं मानते, वे भक्ति के स्वतन्त्र पथ मानते हैं, ज्ञान से ऊँचा मानते हैं—

जात बेनि हवै स भारी । सो स भगति भगत मुखदाई ॥

सो स्वतन्त्र अवलम्ब न आना । तेहि आवान ज्ञान विद्याना ॥

ज्ञानदीपक और भक्तिमणि की तुलना में उन्होंने भक्ति की ज्ञान की अपेक्षा अधिक उपादेयता सिद्ध की है। ज्ञान का फल है मुक्ति, भक्ति का फल है स्वयं भक्तिभावना का उत्तरात्तर विकास—मुक्ति तो उसके पीछे ही दौडती है। हरिभक्ति के बिना मोक्ष सुख भी अधिक देर नहीं टिक सकता। ज्ञान और भक्ति का भी यही सम्बन्ध है—

राम भजन सोइ मुक्ति गोमाई । अनइच्छित आवइ बरिआई ॥

और—

जिमि यल विनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति काउ करे उपाई ॥

तथा मोच्छ मुख मुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ॥

अस विचारि हरि भगत मयाने । मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने ॥

ज्ञान और भक्ति के विषय में तुलसी एकदम निश्चित है—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका । मायन कठिन न मन कहूँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावे कोऊ । भक्तिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ ॥

माया सत्य है परन्तु ब्रह्म से अलग नहीं है । वास्तव में वह ब्रह्म ही की शक्ति है । इमीलिए असत्य भी नहीं हो सकती । ब्रह्म से जो अलग है वह ब्रह्म के सम्बन्ध से ही सत्य है, वरन है ही नहीं । इसी से तुलसी कहते हैं—

जासु मन्यता ते जड माया । भाग्य मन्य इव सो रघुराया ॥

तुलसी ने जानकी को भी माया कहा है—

आदि शक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥

श्रुति मोड पालक राम तुम्ह जगदाश माया जानकी ।

जानकी कारणमाया है । कार्यमाया है विद्या, अविद्या । विद्या माया गुणात्मक ससार की सृष्टि करती है, स्वयं उसमें कोई बल नहीं, वह हरिप्रेरित है । अविद्या-माया असख्य विकारों की जननी है । वह भी हरि की दासी है । तुलसी ने सीता और राम को अभिन्न कहा है—

गिरा अरघ जल बीच सम कहियत भिन्न न भिन्न ।

बदउँ सीतारामपद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥

यही वस्तुतः ब्रह्म और उसकी माया की स्थिति है ।

परन्तु तुलसी यह कहकर भी कि यह जगत् आदि अन्त मध्य में भगवान् है—

आदि मध्यात, भगवत । त सबगत मीश

पर्यन्त ये ब्रह्मवादी ।

जथा पट-तनु घट-मृत्तिका पुष्पस्रग

दारुकरि कनक कटकागदादी ॥

(विनयपत्रिका)

अन्त मे इस अनिर्वचनीयवाद पर उतर आते है—

केशव कहि न जाउ का कहिण ।

देखत तव रचना विचित्र अनि समुझि मनहिं मन रहिण ॥

सुन्य भाति पर चित्र रग नहि तनु विनु लिखा चितेरे ।

योण भिट न मरइ भाति दुख पाइअ णहि तनु हेरे ॥

रविकर नार वग अनि दारुन मकर रूप तेहि माही ।

बदनहीन सो ग्रग चराचर पान करन जे जाही ॥

कोउ कह सत्य भट कह कोई जुगल प्रबल कोउ माने ।

तुलसीदास परिहरे तानि भ्रम सो आपनु पहिचाने ॥

(विनयपत्रिका)

सक्षेप मे तुलसी जगत् की स्थिति को ब्रह्म (राम) के नाते मत्त्य समझते है और ऐसा समझकर उसे प्रणाम भी कर लेते है, परन्तु जीव जिसे ससार समझता है (अर्थात् जीव जिसे ब्रह्म से भिन्न स्वतंत्र सत्ता समझता है), वह आभास-मात्र है—

यन्मत्त्वाद भृषवभाति सकल रज्जौ ययाहेभ्रम ।

(जिसकी सत्ता से रस्सी मे सर्प के भ्रम की भाँति सारा जगत मत्त्य-सा प्रतीत होता है) । स्पष्ट है कि तुलसी ने माया की स्थिति को स्वीकार किया है, परन्तु उसे परतन्त्र बनाकर भी एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है । शकर के मतवाद से तुलसी का मतवाद स्पष्टतः भिन्न है । तुलसी ईश्वर, माया, जीव की स्वतन्त्र

स्थिति मे विश्वास करते है, परन्तु यह स्वतन्त्रता भी आपेक्षिक है
क्योकि वास्तव मे—

ईश्वर अस जीव अविनारी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
मो मायावम भयउ गोमाई । वैवेउ कर सरकट का नाई ।
जड चेतनहि ग्रयि परि गई । जदपि मृपा छुटत कठिनई ॥
तब ते जाव भयउ समारी । छुट न ग्रयि न होइ सुखारी ॥

×

×

×

जीव हृदये तम मोह विमेषा । ग्रन्थि छुटि किमि परइ न देखा ॥

उत्तरकांड के अन्तर्गत ज्ञानदीपक के रूपक मे तुलसी ने विशुद्ध
ज्ञान और उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया है—

सात्विक श्रद्धा वेनु मुहाई । जो हरि कृपा हृदये वस आई ॥
जपतप व्रत जम नियम अपारा । जे युनि कह सुम धर्म अचारा ॥
तेड तृन हरित चर जव गई । भाव बच्छ भिसु पाउ पेन्हाई ॥
नोड निवृत्ति पात्र विस्वामा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परमधर्म मय पय दुई भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छर्मा जुड़ाव । घृति सम जावनु दड जमावै ॥
मुदितो मयै विचार मनानी । दम अधार रजु मय्य सुबानी ॥
तब मयि काटि लेइ नवनीता । विमल विराग सुभग सुपुनीता ॥

जोग अग्नि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावे ग्यान वृत ममता मल जरि जाइ ॥
तब विग्यान रूपिनी बुद्धि विसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै टढ समता दिअटि बनाइ ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढि ।
 तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढि ॥
 ऐहि विधि लेमैं दीप तेज रासि विग्रहानमय ।
 जातहि जामु समीप जरहि मदादिक सलभ मय ॥

मोहमस्मि इति वृत्ति अखटा । दीपसिखा मोड परम प्रचटा ॥
 आतम अनुभव मुख सुप्रकासा । तव भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
 प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटई अपारा ॥
 तव मोड बुद्धि पाइ उँजिआरा । उर गृह बंठि ग्रन्थि निरुआरा ॥
 छोरन ग्रन्थि पाव जौ मोई । तव यह जीव कृतारय होई ॥

(उत्तरकांड ११७-११८)

परन्तु तुलसी ज्ञानमार्गी नहीं, भक्तिमार्गी थे । इसलिये उन्होंने ज्ञान और भक्ति में कौन उपादेय है, इस प्रश्न को दूर तक चलाया है । इस प्रश्न को उपस्थित करते हुए उन्होंने धर्म और दर्शन का गठ-बधन किया है —

(१) गम ही ईश्वर (ब्रह्म) है ।

(२) ज्ञान और भक्ति दोनों में उनकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु भक्ति में ज्ञान की अपेक्षा कुछ विशेषताएँ हैं, अतः वह सुगम है । ज्ञान के साधक को पग-पग पर कठिनाई पडती है, उसे कृपाण की धार पर चलना होता है जिस पर से गिरते हुए देर नहीं लगती । भक्ति का पथ सुगम राजपथ है । ज्ञानी माया के जाल में पडकर साधना भ्रष्ट हो जाता है, परन्तु भक्त को इस प्रकार का डर नहीं है । इसे ही तुलसी ने ज्ञानदीपक और भक्ति चिन्तामणि के रूपकों से स्पष्ट किया । ज्ञान के दीपक को माया की फूँक पल भर में बुझा देती है, परन्तु भक्तिमणि तो निरन्तर दैवीप्यमान है । माया का परिवार उसके निकट फटक ही नहीं पाता—

रामभक्ति वितास्नि सुन्दर । वगड गम्ड जाके उर अतर ॥
 परम प्रकाय रूप दिन राती । नहि क्यु चटिअ दिआ वृत्त वाता ॥
 सोय उरिअ निहट नहि आवा । लोभ वात नहि ताहि बुझावा ॥
 प्रबल अविद्या तस रिटि जाई । हारहि सकत सबल समुदाई ॥
 खन दासादि निहट नहि पाही । तमड भगति जाके उर माही ॥
 गरन सुग सम आरि हिन होई । तेनि रति पिनु सुख पाव न कोई ॥
 व्यापहि ज्ञान रोग न मार ॥ निन्दके वग सत जाव दुगारी ॥

इन मानस रोगों की एक सूची तुलसी ने स्वयं हुए प्रकार दी है —
 मोह, काम, लोभ, क्रोध, विषय-मनोरथ, ममता, ईर्ष्या, हर्ष-विषाद,
 पर सुख देखि जरनि, दुष्टता, अहंकार, दम्भ, कपट, मद, मान,
 तृष्णा, ममर, अविवेक । —(उत्तर १०१)

परन्तु तब प्रश्न यह आता है कि रामनिर्गुण ब्रह्म से सगुण अवतारी पुरुष कैसे हो गये और ब्राह्मण के इन दोनों रूपों में कौन उपार्जनीय है । तुलसी के मत में सगुण दाशरथि राम सुगम है परन्तु वे अपनी मौलिक सामञ्जस्य प्राप्ति के कारण रामनाम को निर्गुण और सगुण राम दोनों से बढकर रख देते हैं । जो हो तुलसी की आसक्ति सगुण रामभक्ति की ओर ही है । रामकथा का आरम्भ विशुद्ध दाशनिक प्रश्नों से ही होता है ।

(१) राम कौन है ?

(२) क्या दाशरथि राम ही निर्गुण ब्रह्म है ?

(३) निर्गुण ब्रह्म अवतारी पुरुष राम कैसे हुए और क्यों हुये ? तुलसी ने जहाँ इन सब प्रश्नों का समाधान उपस्थित किया है वहाँ रामभक्ति के प्रतिपादन और रामकथा के वर्णन सविस्तार है । इस प्रकार वे दर्शन को काव्यभूमि पर स्थापित कर जनमन-रजन और सर्वोपयोगी बना सके हैं ।

काव्य

तुलसी हिन्दी के श्रेष्ठतम कवि है। उनके काव्य के सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते। उत्कृष्ट काव्य के गुण हैं ईमानदारी, विषय में तन्मयता, कला की सादगी, अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता और कल्पना की उच्चता। तुलसी के काव्य में इन गुणों के सिवा कितने ही अन्य गुण हैं। तुलसी ने कोई भी पक्ति ऐसी नहीं लिखी है जिसका सम्बन्ध राम या रामाश्रित जीवन में न हो—यही उनकी ईमानदारी का काफी सबूत है। वे नर-गुणगान करनेवाले 'प्राकृत' कवियों के युग में होते हुये भी उनमें प्रभावित न हुए, यह कितने बड़े आत्मबल की बात है। भले ही आज राम के ईश्वरत्व में डकार कर दिया जाय, परन्तु तुलसी की शतशः पक्तियाँ जिस श्रद्धा और भक्ति के साथ राम का नाम लेती हैं उनका प्रभाव उसी तरह बना है। कवि अपने नायक के मानवेंतर गुणों और उनके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में इतना निश्चित हैं कि विनयपत्रिका के कुछ पदों को छोड़कर हम कहीं भी उसे ढिगता हुआ नहीं पाते। विषय में तन्मयता की बात मानस और विनयपत्रिका के पाठक मात्र जानते होंगे। तुलसी ने दोहे-चौपाइयों के सीधे-सादे कलाहीन वृत्ती को लेकर प्रतिदिन की भाषा में गहरे-से-गहरे भाव भर कर कला को धन्य कर दिया है। ओपड़ियों में रहने वाल अक्षरज्ञान से रहित किसान तक तुलसी की पक्तियों में अर्थ और भाव का आनन्द ले लेते हैं। प्रसाद-गुणभूषित तुलसी का काव्य मंत्र हो गया है। अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता देखना हो तो उत्तरकांड के

दार्शनिक और धार्मिक मतवादों को पढ़िये । कवि की कल्पना कितनी ऊँची जाती है इसके लिये दूर नहीं जाना पड़ेगा । सीता की उपमा देते हुए तुलसी कल्पना की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं—

सिय सोभा नहि जाय बखाना । जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥
 उपमा सकल मोहि लघु लागी । प्राकृति नारि अग अनुरागी ॥
 मीय वरनि तेहि उपमा देई । कुकवि कहाइ अजम को लेई ॥
 जौ पटतरिय ताँय सम सीया । जग अम जुवनि कहाँ कमनीया ॥
 गिरा मुखर तनु अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जाना ॥
 विम-वारुना बधु प्रिय जेही । कहिय रमा सम बिभि बेदेहा ॥
 जौ छवि मुवा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छप मोई ॥
 सोभा रजु मदरु सिगार । मयड पानि पकज निज मार ॥

. . . एहि विवि उपजइ लच्छि जब मुन्दरता मुखमल ।

तदपि ससोच समेत कवि कहहि मीय-सम तून ॥

(वा.काण्ड २४७)

वास्तव में तुलसी का काव्य प्रत्येक प्रकार से महान् है ।

रामचरित मानस एक बृहद् कथाकाव्य है, जिसमें काव्य कथा के बाहर की वस्तु नहीं रह सकती । उसका उपयोग कथा के भीतर ही है । इसलिये यह आवश्यक है कि कवि काव्योपयोगी कथास्थलों को भली भाँति पहचानता हो । तुलसी ने ऐसे स्थल पहचाने ही नहीं हैं, जहाँ उनकी आवश्यकता हुई है, वहाँ उनका निर्माण भी किया है । काव्योपयोगी स्थल मुख्यतः बालकांड और अयोध्याकांड में हैं रामजन्म (वर्णन, अलंकार), राम का बचपन (वात्सल्यरस), पूर्वराग (वर्णन, शृंगार, अलंकार), स्वयंवर और विवाह (वर्णन),

परशुराम लक्ष्मण सवाद (सवाद), दशरथ का मयर्प (वर्णन, सवाद, मनोविज्ञान) वनवास (वर्णन, मानसिक मयर्प) वनपथ (वर्णन), भरत का सयर्प (मनोविज्ञान) चित्रकूट (वर्णन कूट-नीति, राजव्यवहार, भरत का चरित-चित्रण) । इन काडों के अतिरिक्त अन्य काडों में भी काव्योपयोगी स्थल चुने गये हैं—अरण्य (राम का धिरहोन्माद वसन्त-वर्णन पञ्चवर्णन) किष्किधा (वर्षा शब्द वर्णन), सुन्दर (वीर रस) लका (युद्ध वर्णन, अलंकार) उत्तर (अलंकार) उस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि तुलसी की रामकथा रस, अलंकार, वर्णन मनोविज्ञान और व्यवहार ज्ञान, गुण—सभी काव्यगुणों में पट्ट हैं ।

१. रस—वाल्मीकि की रामकथा वीर रसात्मक है आध्यात्म की कथा इतने सज्जप में है कि रसपरिपाक का अवसर ही नहीं आता । तुलसी की विशेषता यह है कि जहाँ उन्होंने सारी रामकथा में भक्ति-रस भर दिया है वहाँ अंगी के रूप में नवरसों में से प्रत्येक को उचित स्थान मिला है । वाल्मीकि की भाँति वे एक ही रस को लेकर नहीं बैठ गये ।

(१) वात्सल्य—किसी भी रामकथा-ग्रन्थ में राम के बचपन का उल्लेख नहीं है । तुलसी की रामगीतावली में कृष्णकथा के समकक्ष राम की बाललीला का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु वह रामचरितमानस में भी इस मौलिक प्रसंग का समावेश करना नहीं भूले है ।

(बालकांड २३५)

(२) शृंगार—वाल्मीकि आदि में रामसीता के मयोग शृंगार का वर्णन नहीं है, परन्तु तुलसी ने प्रसन्नरागव से इंगित लेकर प्रवराग को उपस्थित किया है (बालकांड) । विप्रलभ बहुत कुछ वाल्मीकि के ढग पर है, अन्तर इतना है कि तुलसी के सयोग और

विप्रलभ दोनों मर्यादित है। वास्तव में तुलसी ने आदर्श दामपत्य प्रेम का मर्यादा पूर्ण चित्रण किया है। राम-सीता का प्रेम लोकलज्जा का भाव लेकर चलता है, वह उच्छृंखल नहीं है न वह राधाकृष्ण के प्रेम की भाँति एकान्तिक है। तुलसी की रामायण को छोड़ कर गृह-पति-गृहिणी के स्वस्थ प्रेम का ऐसा विशद चित्रण और कहीं नहीं है।

(३) वीर रस—मानस की कथा मूलतः वीरकाव्य का विषय है। वात्मीकि के प्रत्यक कांड में वीरता के प्रसंग है परन्तु तुलसी ने ऐसे कितने ही प्रसंग हटा दिये हैं (जैसे ताडका मुवाह-प्रथ) और कितने ही सक्षेप कर दिये हैं (देखिये लकाकांड), परन्तु प्रसंगवत् नये प्रकरण उपस्थित करने में भी वे नहीं चूके हैं जैसे लक्ष्मण का जन्म सभा में क्रोध निपाद का भरत-सेना देख कर क्रोध, लक्ष्मण का भरत-सेना देख कर क्रोध, राम का समुद्र पर क्रोध। सुन्दरकांड और लकाकांड तो वीर रसपूर्ण हैं ही।

(४) रौद्र—वीरतापूर्ण प्रकरणों में वीर रस के साथ कहीं-कहीं रौद्र रस भी आ जाता है।

(५) वीभत्स—युद्धवर्णन के प्रसंग में वीर और भयानक रसों के संचारी के रूप में वीभत्स रस भी मिलता है, परन्तु स्वभावतः ऐसे स्थल कम हैं। मानस में कवि की दृष्टि उतनी रमोद्रेक पर नहीं, जितनी चरित्रनायक पर। हाँ कवितावली के कुछ सर्वेयों में जैसे, "औंभरी की भोली कौंधे" आदि, कवि ने इस रस का भी सफल चित्रण किया है।

(६) भयानक—भरत के प्रवेश के समय अयोध्या का बड़ा प्रभावोत्पादक वर्णन है जो भयानक रस के अतर्गत आता है—

असगुन होहि नगर पंठारा। रटहि कुभाँति कुसेत करारा ॥

खर सिआर बोलहि प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर विसेषु भयकर लागे ॥

खग मृग हय गय जाहि न जोए । राम वियोग कुरोग विगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारौ । मनहुँ सबनि सब सम्पति हारी ॥

पुरजन मिलहि न कहहि कछु, गवैहि जोहारहि जाहि ।
भरत कुसल पूछि न सकहि भय, विषाद मन माहि ॥

(अयोध्याकांड १५८)

(७) करुण रस—करुण रस के कई प्रसंग मानस में हैं जिनमें मुख्य हैं दशरथ-मरण, राम-वनवास, लक्ष्मण की शक्ति लगना और अशोकवाटिका में सीता । सीता की करुणापूर्ण विरह दशा को हम करुण विप्रलम्भ के अतर्गत भी रख सकते हैं ।

(८) अद्भुत रस—राम में देवत्व स्थापन से अद्भुत रस की सृष्टि हुई है । तुलसी बालक राम में ही अलौकिक घटनाओं का आरोप कर देते हैं—

एक बार जननी अन्हवाण । करि गिगार पलना पौढाण ॥
निज कुल दृष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कान्ह अस्नाना ॥
करि पूजा नवेद्य चढावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देख सुत जाई ॥
गे जननी गिसु पति भयभाता । देखा बाल तहाँ पुनि सता ॥
बहुरि आठ देखा सुत मोट । हृदय कप मन धार न होई ॥
इहा उहाँ दुट बालक देखा । रति भ्रम भोर कि आन विशेषा ॥
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दान्ह मधुग मुसुकानी ॥

देखरावा मानहि निज, अद्भुत रूप अखगड ।

राम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥

(बालकांड २०१)

अगनित रवि समि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
कालकर्म गन ग्यान मुभाऊ । सोउ देखा जो मुना न काऊ ॥
देखा माया सब विधि गाढी । अति समीत जोरे कर ठाढी ॥
देखा जीव नचावड जाही । देखा भगति जो छोरड ताही ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मँदि चरननि सिर नावा ॥
विममयवत देखि महतारी । भये बहुरि मिसु रूप खरारी ॥

(बालकांड २०२)

भगवान के विराट रूप के कई दर्शन मानस में मिलेंगे । इसी प्रकार परशुराम के दिग धनुष का आप चढ़ जाना—

देन चापु आपहिं चढ़ि गइऊ ।

जैसे कितने ही प्रसंग इस रस की सृष्टि करते हैं ।

(९) हास्य रस—तुलसी की प्रकृति में हास्य का सुन्दर पुट था । नारद-प्रसंग, शिव-व्रगत, लक्ष्मण-परशुराम सवाद, अगद-रावण-सवाद और विवाह के अवसरों पर हास्यरसोपयोगी स्थल उन्होंने ढूँढ निकाले हैं और उनसे अपने काव्य को अलंकृत किया है । कवितावली में उन्होंने विन्ध्य के उदासी मतों की भी चुटकी ले ली है और उनका केवट (निपाद) अपने प्रभु से हँसी करने से नहीं चूकता ।

सारी रामकथा के नव रसों का पर्यायवसान शांत रस में हुआ है और सारे रस भक्ति रस पर आश्रित हैं । इस प्रकार मानस रस-परिपाक की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । परन्तु मानस के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में विशेष रसों का सुन्दर चित्रण हुआ है जैसे विनयपत्रिका में दासतापूर्ण भक्ति, कवितावली में वीर रस,

भयानक रस और वीभत्स रस गीतावलियों में वात्मन्त्य, करुणा और शृंगार ।

२. अलंकार—अलंकारों की ओर तुलसी का आग्रह नहीं है उनको चमत्कार विशेष प्रिय नहीं है परन्तु सहज रूप में ही उनके काव्य में स्थल-स्थल पर अलंकार आ गया है । साधारणतः तुलसी प्रसाद गुण पर ध्यान रखते हुए कथा-प्रवाद में बहते चले जाते हैं परन्तु जहाँ मनोवेजात्मिक स्थल आते हैं वहाँ निरलंकारिक भाषा-शैली को छोड़ कर अलंकारिक शैली को ग्रहण कर लेते हैं जैसे राम के धनुष तोड़ने पर—

मखिन्ह महित हरषा अति राना । सखत यान परा जनु पाना ॥
जनक लहे सुनु गाचु पिहाट । परा थक आह जनु पाट ॥
आहत भण भण वनु गटे । जमे दिवस दीप ज्वाँ कटे ॥
माय मुखहि बरनिअ कहि माना । जनु चानका पाट जलु स्वाता ॥
रामहि लखनु मिलोकन कम । मनिहि चोर किशोरकु जण ॥

(बालकांड २६२)

या कैकेयी-प्रसंग में दशरथ की दशा की अभिव्यक्ति—

सुनि मृदु वचन भूप हिय सोऊ । समि कर छुअत विकल जिमि कोऊ ॥
गयउ सहसि नहि कहु कहि आवा । जनु मचान बन भूपटेउ लावा ॥
विबरन भयउ निपट नरपाल । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माये हाथ नहि दोउ लोचन । तनु वरि सोचु लाग जनु भोचन ॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करनि जिमि हतेउ समला ॥

(अयोध्याकांड २९)

ऐसे स्थलो पर वे अलंकारों का प्रयोग रख कर अनुभूति को तीव्र एवं गहरा कर देते हैं ।

परन्तु तुलसी के अलंकारों का प्रयोग कई ध्येयों को सामने रख कर हुआ है :—

१—मनःस्थिति का चित्रण—

गिराहि प्रिलोकि त्वेउ वनु कमल निव गमउ तबु आर्ता जने ॥

(बालकांड २५९)

गरा अलिनि मुख पाइज रोना । प्रगट न लाज निगम सबलोना ॥
लोचन जलु रह लोचन कोना । जल परम दृषन तप साना ॥

(वही)

२—मौन्दर्य का चित्रण—

छवि गृह दाप नि सा जनु गरई । (राता)

प्रमुहि चितउ पुनि चितउ मरि । राजत लोचन लोच ।
खेलत मनगिजु मीन जुग जनु त्रिगु मउल डोच ॥

(बालकांड २५८)

३—परिस्थिति का चित्रण—

अरुनोरय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।
जिभि तुम्हार आगमन सुनि भण नृपति बलहीन ॥

(बालकांड २३८)

नृप सब नखन करहिं उजियारी । टारि न सकहि चाप तम भारी ॥
 कमल कोक मधुकर खगनाना । हरषे सकल निसा अवसाना ॥
 ऐमेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे । होइहि दृष्टे धनुष सुखारे ॥
 उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा । दुरे नखन जग तेजु प्रकासा ।
 रवि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रभु प्रतापु सब नृपहि दिखाया ॥
 तव भुजबल महिमा उद्घाटी । प्रगटी धनु विघटन परिपाटी ॥

(बालकांड २३९)

उदित उदयगिरि मच पर रघुवर बाल पतग ।
 बिक्रमे सन सरोज सब हरषे लोचन मृंग ॥

नृपन्ह केरि आमा निसि नासी । बचन नखन अबलीन प्रकासी ॥
 मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लकाने ॥

(बालकांड २५५)

४—क्रिया का चित्रण—

लका द्वी कयि सोहहि कैसे । मयहि सिधु दुइ मंदर जैसे ॥

(लकाकांड ४५)

परन्तु कुछ अलकारों का इतना सार्थक प्रयोग नहीं हुआ है ।
 उनमें चमत्कार प्रदर्शन और उक्ति-वैचित्र्य की प्रतिष्ठा करने की
 ही प्रवृत्ति अधिक है और वे काव्य रूढ़ियों पर आश्रित हैं जैसे—

पूरब दिसा विलोकि प्रभु, देखा उदित मयक ।

कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असक ॥ ११(ख)

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥
 मत्त नाग तम कुम्भ विदारी । ससि केसरी गगन बनचारी ॥
 विथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुन्दरी केर सिगारा ॥
 कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥
 कह सुग्रीव सुनहुँ रघुलाई । ससि महुँ प्रगट भूमि कै भाँई ॥
 मारेउ राहु ससिहि कह कोई । उर महेँ परी स्यामता सोई ॥
 कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा । सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
 छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माही । तेहि मग देखिअ नभ परिछाही ॥
 प्रभु कह गरल बहु समि केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
 विष सजुत कर-निकर पमारी । जारत विरहवत नर नारी ॥

कह हनुमत सुनहु प्रभु, समि तुम्हार प्रिय दास ।

तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥१२॥

सुनु सुनि कह पुरान श्रुति सता । मोह विपिन कहुँ नाहि बसता ॥
 जप-नप-नेम जलाश्रय भारी । होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
 काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहिं हरष प्रद वरषा एका ॥
 दुर्वासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
 धर्म सकल सरसी रह वृदा । होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुख मदा ॥
 पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥

(अरण्यकांड ४४)

तुलसी ने अलकारो के दो नवीन और विशद प्रयोग किये हैं—ये हैं प्रकृति और धर्मनीति के सम्बन्ध में । तुलसी ने कम से कम मानस में कही भी प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण नहीं किया है । वर्षा-शरद वर्णनों में उसने प्रकृति के भीतर धर्म के गहरे सिद्धान्तों की भाँकी देखी है । साधारण वस्तुओं और परिस्थितियों को स्पष्ट करने के

लिये भी वे दर्शन और मानव-स्वभाव और नीति की गहराइयों में उतर जाते हैं जैसे—

भूमि परत भा ड़ावर पानी । जनु जीवहि' माया लपटानी ॥

वैसे तो तुलसी के मानस से लगभग सभी अलंकारों के उदाहरण इकट्ठे किये जा सकते हैं परन्तु उन्होंने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त का ही प्रयोग अधिक किया है। इन अलंकारों के सुन्दर, सार्थक और सुष्ठु प्रयोगों में वे अद्वितीय हैं।

परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि तुलसी अलंकार लिखने के लिए अलंकार नहीं लिखते। वे इनके द्वारा रामकथा में काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, परन्तु काव्य-सौन्दर्य धर्म-भावना को विकसित करने ही का साधन है। स्वयम् तुलसी के लिए उसका यही मूल्य है। उम्र युग में जब अलंकार, रस, रीति और छंद ही प्रधान हो रहे थे जब कविता के बाह्यपक्ष ने कवि की मारी शक्तियों का ग्राम बना लिया था, तुलसी ने इनकी अवहेलना कर शुद्ध काव्य रस (या भक्ति रस) को ही लक्ष्य माना और अपने काव्य में इस आदर्श को निवाहा।

३. वर्णन—कथात्मक काव्य मूलतः वर्णनात्मक होता है परन्तु यहाँ हमारा उद्देश्य विशेष वर्ण्य वस्तुओं का उद्घाटन है। वर्णन के कई भेद हो सकते हैं। १ सौन्दर्य वर्णन २ प्रकृति वर्णन ३ मनुष्य निर्मित वस्तुओं का वर्णन (नगर, सरोवर, ईर्ष्या) ४ उत्सव वर्णन ५ कथावर्णन ६ मनोभावों का वर्णन।

१—सौन्दर्य वर्णन—तुलसी ने सीता का सौन्दर्य केवल परोक्ष रूप में इंगित किया है परन्तु राम के सौन्दर्य के अनेक उत्कृष्ट चित्र

उपस्थित किए हैं। इनमें से अधिकांश बालकांड में हैं। तुलसी राम-भक्त है। भक्तिभावना के दृढ़ करने को ही वे अपने आराध्य राम के रूप-शील का बार-बार सविस्तार वर्णन करते हैं। मानस के बालकांड में राम के शिशु, बाल और किशोर रूपों के बहुत हृदयाकर्षक वर्णन मिलेंगे। इन्हें हम “नख-शिख” में अन्तर्गत रख सकते हैं। मध्ययुग के कृष्णभक्त कवियों ने राधाकृष्ण के शतशः नख-शिख लिखे हैं। तुलसी अपने समय की इसी नखशिख-लेखन-परिपाटी से भी प्रभावित हुए होंगे। गीतावलियों के अनेक गीतों में राम का नखशिख अत्यन्त सुन्दरता से कहा गया है।

२—प्रकृति वर्णन—शुद्ध प्रकृति वर्णन का लगभग अभाव है परन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं धर्मतत्त्व से मिले हुए प्रकृति-चित्र बराबर मिलते हैं अथवा कभी-कभी रूपों के रूप में उनका प्रयोग होता है :—

ऋतु (वर्षा, शरद, वसन्त)

तड़ाग (पम्पा सरोवर)

समुद्र (विनयपत्रिका में धर्मकण्ठों की अभिव्यञ्जना के लिए)

मेघ (विनयपत्रिका में रूपक रूप में)

नदी (चित्रकूट)

सूर्योदय (बालकांड में दो बार प्रभाव सृष्टि के लिए)

चन्द्रोदय (बालकांड में उद्दीपन के रूप में और लकाकांड में ऊहापोह)

सन्ध्या (बालकांड में अयोध्या के अग्ररुध्मार्च्छादित सौन्दर्य के लिए)

वास्तव में तुलसी की दृष्टि राम को छोड़ कर दूसरी वस्तुओं को ओर कम जाती थी। वे शुद्ध कवि नहीं थे। भक्त-कवि थे। यदि वे

चाहते तो बाल्मीकि की भोंति अनेक सुन्दर प्रकृति चित्र दे सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। रामकथा का अधिकांश विकास वनो, पर्वतो और नदियों के सन्निकट हुआ है और वह भी एक दो वर्ष नहीं, चौदह वर्ष परन्तु हमारे दुर्भाग्य से तुलसी ने इतने बड़े अवसर रहते हुए भी प्रकृति की अवहेलना की।

३—मनुष्य-निर्मित वस्तुओं का वर्णन—तुलसी में नगरो, उपवनो, और प्रासादो के भी वर्णन प्रसगतः आये हैं। रामकथा तीन नगरो में चलती है अयोध्या, जनकपुरी और लका।

रामचरितमानस में इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है—

अवधपुरी सोहइ एहि भोंती । प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी । तदपि वनी सभ्या अनुमानी ॥
अगर धूप बहु जनु अधियारी । उडइ अबीर मनहु अरु नारी ॥
मदिर मनि समूह जनि तारा । नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा ॥
भवन वेद धुनि अति भृदु बानी । जनु खग मुखर समय जनु सानी ॥

(बालकांड १९५)

पुरजन जावत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुन्दर भवन सँवारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥
गली सकल अरगजाँ सिचाई । जहँ तहँ चौके चारु पुराई ॥
बना बजार न जाइ बखाना । तोरन केतु पताक बिताना ॥
सफल पूग फल कदलि रसाला । रोपे बकुल कदव तमाला ॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी । मनमय आल बाल कलकरनी ॥

बिबिध भोंति मगल कलस गृह गृह रचे सँवारि ।

सुर ब्रह्मादि सिंहाहि सब, रघुबर पुरी निहारि ॥ ३४४ ॥

भूप भवन क्षोह अक्सर सोहा । रचना देखि मदन मन मोहा ॥
मंगल सगुन मनोहर ताई । रिधि सिधि सुख सपूदा सुहाई ॥
जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए ॥

(बालकांड ३४५)

लका का वर्णन कवि सुन्दरकांड मे इस प्रकार करता है—

कनक कोट विचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना ।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीयी चारु पुर बहु बिधि बना ॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूयन्हि को गनै ।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहि बनै ॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहही ।
नरनाग सर गधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही ॥
कहु भाल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जही ।
नाना अखारेन्ह भिरहि बहुबिधि एक एरुन्ह तर्जही ॥
करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहु दिसि रच्छही ।
कहु महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही ॥

(सुन्दरकांड ३)

पूर्व राग प्रसंग मे उसने उपवन का भी सुन्दर वर्णन किया है ।
(बालकांड २२७)

४—उत्सव वर्णन—रामजन्म, राज्याभिषेक और राम के बनवास लौटने पर अयोध्यावासियों के आनन्दोत्सवों का स्वतंत्र सुन्दर वर्णन है । यहाँ हमे राम सीता विवाहोत्सव को नहीं भूलना चाहिये जो पूर्णतः मौलिक कृति है और बालकांड की रामकथा का प्राधा विस्तार जिसे दिया गया है (२८६—३६१) । पार्वती मंगल और जानकीमंगल मे भी शिव-पार्वती और राम-सीता के विवाह के

इसी प्रकार के सूक्ष्म, विस्तृत औइ आकर्षक वर्णन है। राम-सीता लक्ष्मण वनवर्म को निकलते है तो सारे वनपथ मे भीड लग जाती है। सब इन्हे देखने आते है। इस वनपथ के वर्णन को भी हम उत्सव वर्णन की श्रेणी का ही समझते है (अयोध्याकांड ११०—१३४)

५—कथा-वर्णन—कथावर्णन मे तुलसीदास की पटुता सारे राम-चरितमानस के निर्माण मौष्ट्य और कुटकर कथाओं मे विषय, परिस्थिति और वर्णन के ग्रहण और त्याग से भली भाँति प्रगट होती है। सारी कथाएँ अलग-अलग होकर भी एक सूत्र मे अत्यन्त चतुरता से गुँथ दी गई है। ऐसा लगता है कि प्रत्येक प्रसंग अन्तर्गत प्रसंग का उचित विकास है। कथा-संगठन मे तुलसी ने इस बात का ध्यान रखा है कि वे कम से कम घटनाओं, कार्यव्यापारों और शब्दों का प्रयोग करे जिससे उसका रूप सुष्ठु बना रह सके। उन्होंने पौराणिक शैली को (कम-से-कम जहाँ तक रामचरितमानस का सम्बन्ध है) ग्रहण किया है, परन्तु उन्होंने पुराणकारों की भाँति अतर्कथाओं को महत्त्व नहीं दिया है। जहाँ-जहाँ वाल्मीकि मे इस प्रकार की अतर्कथाएँ है (जिनका विस्तार कभी-कभी कई सर्गों तक चला गया है) वहाँ-वहाँ उन्होंने इनका निर्देश मात्र कर दिया है। उदाहरण के लिए—

भगति हेतु बृह कथा पुराना । कहे विप्र जयपि प्रभु जाना ॥२०१॥
 पूछा मुनिदि सिला प्रभु देखी । सकल कथा मुनि कहा विशेषी ॥२०१॥
 चले राम लङ्घिमन मुनि सगा । गए जहाँ ज गपावनि गगा ॥
 गाधि सुवन सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि रहि आई ॥२२२॥
 तापस अध गाप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥१५५॥

६—मनोभावों का वर्णन—इस पर हमने मनोविज्ञान शीर्षक के नीचे विचार किया है।

४ मनोविज्ञान—तुलसीदास की आलोचना करते हुए बाबू श्यामसुन्दरदास लिखते हैं—“मेरी समझ में तुलसीदास की सर्व-प्रियता और मनोहरता का कारण उनका चरित्र-चित्रण और मानवीय विकारों का स्पष्टीकरण है। इन दोनों बातों में वे इस पृथ्वी के जीवधारियों को नहीं भूलते। उनके पात्र स्वर्ग के निवासी नहीं, पृथ्वी से असंपृक्त नहीं। उनके कार्य, उनके चरित्र, उनकी भावनाएँ, उनकी वामनाएँ, उनके विचार उनका व्यवहार सब मानवीय हैं। यही कारण है कि वे मनुष्यों के मन में चुभ जाते, उन्हें प्रिय लगते और उन पर अपना प्रभाव डालते हैं।”

मनोविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि में अयोध्याकांड सर्वोत्तम है। वास्तव में मनःविकारों का द्वन्द्व यही चलता है। इस कांड में मनो-विज्ञान अनेक दिशाओं में प्रगट हुआ है, (१) कथा में, (२) कथोपकथन में, (३) आलंकारिक वर्णन में। ‘रामचरितमानस’ के लगभग सभी भागों की इस कांड में कड़ी परीक्षा हो जाती है और विभिन्न स्वार्थों के घात-प्रतिघात चलते हैं। इससे तुलसी को मनो-वैज्ञानिक स्थलों को खोलकर ही आगे बढ़ना होता है। राम-वनवास की एकान्त समस्या को लेकर मनोविज्ञान का एक महल ही खड़ा कर दिया गया है। यह मनोविज्ञान निरूपण तीन दिशाओं में सबसे अधिक पूर्णता प्राप्त कर सका है। मथुरा-कैकेई (१४—२४) कैकेई-दशरथ (२७—३७) और, भरत की आत्म-ग्लानि (१६१-१७९)। अन्य कांडों में न मनोविज्ञान प्रगट करने के अवसर आये हैं, न वह विकसित ही हो सका है। उनमें रामों के निरूपण की ही विशेष प्रधानता हो सकती है। कुछ पक्तियों में तुलसी का मनो-वैज्ञानिक कौशल स्पष्ट हो जायगा। कैकेई जब दशरथ से वरदान माँगती है तो धीरे-धीरे उनकी गूढ़ता और भयकरता राजा की समझ में आती है और उन पर उत्तरोत्तर गम्भीर प्रभाव पड़ता है—

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू । ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
 गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा । जनु सचान बन भूपटेउ लावा ॥
 बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू ॥
 माथे हाथ मूदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
 मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हनेउ समूला ॥

(अयोध्या० २९)

इस प्रकार की कुछ थोड़ी ही पक्तियों में दशरथ के क्षुब्ध-मनः-भवन की भाँकी हमें दिखला देते हैं। काव्य उपन्यास नहीं है जहाँ पात्र के मनोविज्ञान का स्पष्ट करने के लिए पन्ने रंगे जायें, वास्तव में कला की सब से कड़ी परीक्षा यही होती है।

५ तुलसी का व्यवहार-ज्ञान—तुलसी का लौकिक ज्ञान बहुत विस्तृत था। उनके ग्रन्थों में उनका प्रकृत-सम्बन्धी ज्ञान, मानव-स्वभाव ज्ञान, आचार-विचारों का ज्ञान और भौतिक एवं सैद्धान्तिक आदर्शों का ज्ञान कूट-कूटकर भर दिया गया है। इस ज्ञान से पुष्ट होकर ही रामचरितमानस साधारण जनता, ग्रामोणों और मजदूरों के अति निकट की चीज़ हो गया है। उनकी सूक्तियाँ, कहावते, अन्योक्तियाँ, अलंकार, वग़ैरा—सभी को उनके व्यवहार-ज्ञान से बल मिला है और अनक स्थलों पर इसी के कारण वे काव्य की उच्चभूमि पर उठे हैं। ग्रन्थ-ज्ञान (शास्त्र) के साथ व्यवहार-ज्ञान का इतना सुन्दर मेल हिन्दी के किसी कवि में नहीं है, संस्कृत के किस कवि में है, यह ठूँढ़ना सरल काम नहीं है। भाई-भाई और गुरु का सम्बन्ध देखिये—

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥

×

×

×

बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही । रघुवर जाय सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लखन उर लाएँ । सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढे धरि उर पद जलजाता ॥

उठे लखनु निसि विगति सुनि, अरुन सिखा धुनि कान ।
गुरु ते पहलेहिँ जगतपति, जागे राम सुजान ॥

सकल सौच करि जाइ नहाए । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥

(बालकांड २२६, २२७)

अयोध्याकांड के उत्तरार्द्ध में चित्रकूट के प्रसंग के अतर्गत पार-स्परिक शिष्टाचार का जैसा चित्रण है, वह तुलसी के व्यवहार-ज्ञान और आदर्शभावना का सुन्दरतम चित्र है। कौन किससे किस प्रकार मिले, किसका सम्मान किस प्रकार हो, इसमें कहीं जरा भी भूल-चूक नहीं हुई है। इस मिलन-भेंट के प्रसंग की सरसता बढ़ाने और शिष्टाचार का व्यवहार-ज्ञान देने के लिए ही इतने विस्तार से स्थान दिया गया है। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के तुलसी जानकार थे। यह कहा जाता है कि उन्हें राजकीय शिष्टाचार का विशेष ज्ञान नहीं था—उदाहरण के लिए अगद-रावण-सम्वाद सामने रखा जाता है। परन्तु वास्तव में तुलसी रावण के सामने होते ही अपनी रामभक्ति के प्रवाह में बह जाते थे, तब शिष्टाचार की बात ही कौन पूछता। यहाँ अज्ञान की बात नहीं, भावना की बात है। जहाँ-जहाँ उन्होंने मर्यादा और शिष्टाचार का उल्लंघन किया (जैसे मदोदरी-रावण-सवाद में) वहाँ-वहाँ वे रामभक्ति के प्रवाह में बह गये हैं, नहीं तो अन्य स्थलों पर उनका व्यवहार-ज्ञान ही काव्य का बल है।

६. तुलसी के काव्य में समय—भाषा, रस, सामाजिक व्यवहार,

कवित्वपूर्ण चित्रण (अलंकारों का प्रयोग और मूर्तिमत्ता) इन सभी में तुलसी ने अत्यन्त कौशल और सयम से काम लिया है। उनका रामचरितमानस इस विषय में अद्वितीय है। तुलसी के नायक भगवान् राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, अतः तुलसी उच्छ्वंखल हो ही नहीं सकते थे। वे काव्य की भूमि पर अत्यन्त सतर्कता से खड़े होते हैं जहाँ दूमरों के पैरों के नीचे से धरती खिसक जाती है।

हम रस की बात ही ले। रसों में शृंगार-रस का मर्यादित चित्रण बहुत कठिन है। शृंगार में उहापोह ही विशेष रहता है, परन्तु तुलसी साहित्य-शास्त्र का पूरा सहारा लेते हुए भी लेखनी पर बंधन स्वीकार करते हैं। प्रसंग पूर्वराग का है जो तुलसी ने “प्रसन्न-रागव” से लिया है, परन्तु तुलना करने पर तुलसी का सयम स्पष्ट हो जायगा। नीचे हम इस वाटिका-प्रसंग के मर्यादापूर्ण स्थलों पर प्रकाश डालते हैं—

(१) राम लक्ष्मण के साथ गुरु की आज्ञा से फूल लेने जाते हैं।

समय जान गुरु आयम् पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

(बालकांड २२७)

यहाँ गुरु की आज्ञा है, अतः दम्पति-मिलन की भूमिका में विश्वामित्र की अनुमति प्रतिष्ठित है। दूमरे लक्ष्मण छोटे भाई साथ है जिससे राम उच्छ्वंखल नहीं हो सकते।

(२) पूजा के लिए फूल चुनते हैं। यह भी प्रत भावना है।

(३) बाग में जाकर भी उच्छ्वंखलता नहीं बरतते, वरन् माली से पूछकर ही फूल लेते हैं।

चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥

(बालकांड २२८)

उहीपन के रूप मे जनक का बाग है जिसका तुलसी ने सक्षेप मे वर्णन किया है—

लागे विटप मनोहर नाना । वरन वरन वर बेलि बिताना ॥
नव पल्लव फल मुमन मुहाण । निज सम्पति सुर रख लजाण ॥
चानक कोकिल कीरि चकोरा । कूजत बिहग नटन कल मोरा ॥
मन्य बाग सरु मोह सुहावा । मनि सोपान विंचित्र बनावा ॥
विमल मलिल सरमिज बहुरगा । जलखग कूजत गुजत नृ गा ॥

(बालकांड २२७)

(४) सीता जी उस राजोपवन मे गिरिजा (पार्वती) की पूजा करने आती है और पूजा करती है, इससे भी प्रसंग मे पूत-भावना की प्रतिष्ठा होती है और शृंगार-भाव का सयमन हो जाता है (गिरिजा पूजन जननि पठाई । २२८ पूजा कीन्ह : वही)

(५) स्वयम् अकस्मात् भेट नहीं हो जाती । सखियों मे से एक सखी अचानक युगल कुमारो को देखकर लौटती है—

एक सखा मिय सगु बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहि दोउ बधु-बिलोके जाई । प्रेमबिबस सीता पहि आई ॥

तासु दसा देखा सखिन्ह, पुलक गात जलु नैन ।

कहु कारनु निज हरष कर, पूछहि सब मृदु बैन ॥ २२८ ॥

देखन बागु कुँअर दुइ आए । बय किसोर सब भौंति सुहाए ॥
श्याम गौर किमि कहौ बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

सुनि हरषी सब सखी सयानी । सिय हिय अति उतकठा जानी ॥
 एक कहइ नृप सुत तेइ आली । सुने जे मुनि सँग आए काली ॥
 जिन्ह निज रूप मोहनी डारी । कीन्हे स्वबस नगर नरनारी ॥
 बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू । अवसि देखिअहि देखन जोगू ॥
 तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥

(बालकांड २२९)

इस “प्रीति” के स्वाभाविक विकास के बाद भी कवि ‘प्रीति पुरातन लखइ न कोई’ २२९ और ‘सुमिर सीय नारद वचन’ कहकर अपनी श्रृंगार-भावना को मर्यादित कर देता है ।

(६) राम अपने मन की बात को सहज रूप से लक्ष्मण से कह देते हैं—

ककन किंकनि नूपुर धुनि सुनि । कहित लखन मन रामु हृदय गुनि ॥
 मानहुँ मदन दुन्दभी दीन्ही । मनसा बिरव विजय कहँ कीन्हीं ॥

(बालकाण्ड २३०)

तात जनकतनया यह सोई । वनुषजज्ञ जेहि कारन होई ॥
 पूजन गौरि मखी लै आई । करन प्रभासु फिरत फुलवाई ॥
 जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत भोर मनु छोभा ॥
 सो सब कारन जान विवाता । फरकहि सुभग अग सुनु आता ॥
 रघुबसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपथ पगु धरई न काऊ ॥
 मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहु परनारि न हैरी ॥

(बालकाण्ड २३१)

अंतिम पंक्तियों से वातावरण को साधारण ऐन्द्रियकता से कही ऊँचे

नैतिक धरातल पर उठा दिया गया । परन्तु शृंगार-भाव बना रहे इसलिये तुरन्त आता है—

करत बतकही अनुज सन मन मिय रूप लभान ।

मुख सरोज मकरद छवि, करड मधुप डव पान ।

यहाँ सखी लता की ओट से राम को दिखाती है—

लता ओट तब मखिन लखाए । म्यामल गौर किमोर मुहाए ।

देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥

उपर्युक्त पक्तियों में “हरषे जनु निज निधि” में मीताराम की एकता का आध्यात्मिक संकेत है । तुलसी शृंगारात्मक शब्दावली (रोमांच, कप, विषथु आदि) प्रयोग में नहीं लाते । मीथे हर्ष के बाद जड़ता-भाव का उल्लेख करते हैं—

अके नयन रघुपति छवि देखे । पलकन्हिहं परिहरी निमेषे ॥

अधिक मनेहँ देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥

(७) अब राम का सौन्दर्य-वर्णन आता है—

सोभा सीवै सुभग दोउ बीरा । नील पीत जल जात सरीरा ॥

मोरपख सिर मोहत नाके । गुच्छा बीच विव कुसुम कली के ॥

भाल तिलक अमबिन्दु मुहाए । अवन सुभग भूषन छवि छाए ॥

बिकट मृकुटि कच घूँघरवारे । नव सरोज लोचन रतनारे ॥

चारु चिबुक नासिका कपोला । हास विलास लेत मनु मोला ॥

मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाही । जो बिलोकि बहु काम लजाही ॥

उरमनि माल कबुकल ग्रीवा । काम कलभ कर भुजबल सीवा ॥

सुमन समेत बाम कर दोना । सौँवर कुँअर सखी सुठि लोना ॥

केहरि कटि पटपीत धर सुषमा सील निधान ।

देखि भानुकुल भूषनहि, विसरा सखिन्ह अपान ॥ २३३ ॥

यहाँ भी तुलसी लक्ष्मण को नहीं भूले है । “दोउ वीरा” से यह बात स्पष्ट है ।

(८) प्रसंग की समाप्ति हास्य में होती है—

धरि धीरजु एक आलि सयानी । सीता सन बोला गहि पानी ॥

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किसोर देखि किन लेहू ॥

सकुचि सीय तव नयन उधारे । सम्मुख दोउ रघुसिंह निहारे ॥

नख-सिख देखि राम कै सोभा । मुभिरि पिता पनु मनु अति छोभा ॥

परबस सखिन्ह लखी जब सोता । भयउ गहरु सब कहाहि समीता ॥

पुनि आउव एहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ॥

गूढ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलवु मातु भय मानी ॥

वरि बडि वीर रामु उर आने । फिरा अपनपउ पितु बस जाने ॥

देखन भिस भृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि पहेरि ।

निरख निरखि रघुवीर छवि बाढइ प्रीति न थोरि ॥ २३४ ॥

(९) अब सीता लौटकर राम की प्राप्ति के लिये गौरी से प्रार्थना करती है ।

(बालकण्ड २३५-२३६)

(१०) इधर राम-लक्ष्मण गुरु के पास पहुँचते हैं । राम सब बात निःसकोच मन होकर कह देते हैं और गुरु से भी आशीर्वाद पाते हैं । स्पष्ट है कि इस योजना से राम की सीता विषयक उत्कठा वासना का रूप धारण नहीं कर पाती—

हृदयै सराहत सीय लोनाई । गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥

राम कहा सब कौसिक पाही । सरल सुभाउ छुअत छल नाही ॥

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही । पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही ॥
मुफल मनोरथ होहि तुम्हारे । रामु लखन सुनि भए सुखारे ॥

(बालकांड २३७)

इस पूर्वांग प्रसंग का अंत चन्द्रोदय के उद्दीपन वर्णन में होता है—

प्राचा दिसि समि उयउ सुहावा । सिय मुख सरिस देखि मुख पावा ॥
बहुरि विचारु कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥

जनमु गिउ-उनि बउ विसु, दिन मलीन सकलक ।

सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रक ॥ २३७ ॥

वियोग की अवस्था में भी राम लक्ष्मण से कह देते हैं परन्तु पद-पद पर संभलते जाते हैं जहाँ वाल्मीकि में लक्ष्मण को बराबर उन्हें समझाना और संभालना पड़ता है (सीताहरण-प्रसंग) । तुलसी स्थान-स्थान पर राम के स्वरूप का वर्णन करते हैं, परन्तु कोलिनी-किरातिनियों में उस प्रकार की प्रीति-रति का जन्म नहीं होने देते जो कृष्ण के रूप दर्शन से गोपियों में हुआ था (वनपथ) । वे राम के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं, परन्तु मधुर रस (शृंगार) का भाव नहीं आने पाता । समाज की मयादा बनी रहती है । आकषण व्यक्तिगत धर्मभावना तक ही रहता है ।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने सीता के सौन्दर्य को अत्यन्त मर्यादा-भाव से हमारे सामने उपस्थित किया है (देग्विये लक्ष्मी और दीप-शिखा रूपक) । केवल सीताहरण के बाद शृंगार का पुट आ जाता है, परन्तु लक्ष्मण पर प्रगट होने के कारण वह भी मर्यादित ही माना जायगा । इसी प्रकार सीता के विरह में भी मर्यादा है । केवल अशोकवाटिका प्रसंग में “प्रलाप” रूप में उसके दर्शन होते हैं—

देखिअत प्रगट गगन अगारा । अवनि न आवत एकउ तारा ॥
 पावकमय ससि खवत न आगी । मानहुँ मोहिं जानि हतभागी ॥
 सुनहि बिनय मम विटप असोडा । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
 नूतन किसलय अनल समाना । देहि अग्निनि जनि करहि निदाना ॥

(सुन्दरकाण्ड १२)

इस प्रकार हम तुलसी के काव्य में पग-पग पर सयम और मर्यादा को उच्छृंखल कल्पना के पख कतरते देखते हैं। सच तो यह है कि इसी कठोर सयम के कारण तुलसी प्रत्येक जाति और प्रत्येक सस्कार को प्रिय हो सके हैं।

७—पात्रों का चरित्र-चित्रण—तुलसी ने अपने पात्रों को दो विशेष धरातलों पर खड़ा किया है। एक धरातल का सम्बन्ध राम की मानव-लीलाओं में है और दूसरे का राम के मानवेतर रूप से। अधिकांश कथा में यह दोनों धरातल एक दूसरे को लपेटे हुए चलते हैं। पहले हम उस धरातल पर विचार करेंगे जिसका सम्बन्ध राम के मानवेतर रूप से है।

मानस के सभी पात्र रामभक्त हैं। यह हो सकता है कि उनकी भक्ति स्पष्ट रूप से हमारे सामने नहीं आती—अप्रकट रह जाती हो। परन्तु प्रकट रूप से या अप्रकट रूप से तुलसी के समस्त पात्र रामभक्त हैं, विशेषतः रामचरितमानस के पात्र। तुलसी की राम-भक्ति उनके पात्रों में भी व्याप्त हो गई है। मानस का कोई भी पात्र राम को छोड़कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता। वह शरीर है तो राम आत्मा हैं। राम के परिवार के स्वजन और आत्मीय, देव, ऋषि, भक्त, ऋक्ष, वानर, पुरजन-परिजन, विरोधी राक्षस सभी राम के स्वरूप से परिचित हैं और प्रगट या अप्रगट रूप से उनके भक्त

हैं। रावण और मेघनाद राम के सबसे बड़े प्रतिद्वन्दी हैं। उन्होंने जीते-जीते राम की ब्रह्मसत्ता को स्वीकार नहीं किया परन्तु मरते समय किसी भी भाव से दोनों ने रामनाम का उच्चारण कर मुक्ति पाई। राम-रावण युद्ध में मरे हुए राक्षसों के सम्बन्ध में तुलसी का मतव्य है—

रामाकार भए तिन्ह के मन ।

मुक्त भए छूटे भव-बन्धन ॥

तुलसी के सब चरित्रों में से कितने ही चरित्र तो केवल भक्त ही हैं अथवा राम के मृत्यु रूप को जाननेवाले ही हैं। उनकी अवतारणा इसलिए की गई है कि उनसे तुलसी का एक विशेष उद्देश्य पूर्ण होता है। वे कथा-प्रसंग को किसी भी प्रकार आगे नहीं बढ़ाते। उन्हें स्पर्शमात्र करके चले जाते हैं। सुतीक्ष्ण, अत्रि, सरभग, शबरी, वाल्मीकि, भरद्वाज ऐसे ही चरित्र हैं। अध्यात्म रामायण में इन्हें इसी रूप में रखा गया है। अतएव इतना ही है कि वहाँ वे ब्रह्मज्ञानी हैं, यहाँ भक्त।

अन्य पात्रों की रामभक्ति उनके चरित्र अथवा व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग है। राम के साथ उनके मानवीय सम्बन्ध में उनका जो चरित्र प्रकाशित होता है, वह अलग बात है। अब हम मानस के पात्रों के चरित्र पर विचार करेंगे।

ऊपर हम देख चुके हैं कि तुलसी ने सभी पात्रों में रामभक्ति का समावेश करके एक विचित्रता ला दी है परन्तु साधारण चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने मौलिकता से काम लिया है। यह मौलिकता कई प्रकार की है :—

(१) उन्होंने वाल्मीकि के चरित्र-चित्रण के दोषों को ग्रहण नहीं किया है। वे आदर्श की ओर वाल्मीकि की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते हैं। इससे वे काव्य की भूमि पर अत्यन्त सतर्कता से चलते हैं। ऐसा वे इस तरह करते हैं। वे उन विशेष उक्तियों को स्थान नहीं देते जो उनके चरित्रों को लाञ्छित करती हैं। वाल्मीकि के अयोध्याकाण्ड के २३वे सर्ग में श्रीरामचन्द्र सीता से कहते हैं—

ऋद्धियुक्ताहि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।

तस्मान्न ते गुणा कया भरतस्याग्रतो मम ॥

(ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरों की प्रशंसा नहीं सह सकते, इसलिए तुम कभी भरत के सामने मेरी प्रशंसा मत करना) या ऐसे स्थलों पर संकेतमात्र से काम लेते हैं। लक्ष्मण जी की उग्रता की बहुत कुछ रक्षा तुलसीदास ने भी की है परन्तु उन्हें मर्यादा से बाहर जाना प्रिय नहीं था। लक्ष्मण जी सुमत्र के हाथ यह पिता को भेजते हैं—

अह तावन्महाराजे पितृव नोपलक्ष्ये ।

भ्रात भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघव ॥

(हम महाराज में कोई पितापते का लक्षण नहीं देखते, इत्यादि) तुलसी ने इसे यों लिखा है—

पुनि कछु लखन कहीं कटु वानी । प्रभु वरजेउ बढ अनुचित जानी ॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥

सुमत्र पहुँचकर लक्ष्मण की बात यों कहते हैं—

लखन कहे कछु वचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहिं निहोरा ॥

बार बार निज सपथ देवाई । कहबि न तात लखन लरिकाई ॥

तुलसी भी राम से सहमत है। वे लक्ष्मण के व्यवहार को “अनुचित” और “लरिकाई” (लड़कपन) कहते हैं।

(२) इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक प्रकार के परिवर्तन किये हैं। वाल्मीकि में भरद्वाज भरत पर सदेह करते हैं परन्तु तुलसी के भरद्वाज तो भरत पर मुग्ध है।

(३) तुलसी में भरत का चरित्र सदेह से परे है। वाल्मीकि में जहाँ वे शपथ खा-खा कर ही कौशल्या को आश्वस्त कर पाते हैं, वहाँ तुलसी की कौशल्या को उनमें कोई लांछन दीखता ही नहीं।

(४) यही बात सीताहरण के अवसर पर है। लक्ष्मण सीता को छोड़ना नहीं चाहते तो सीता उस समय लक्ष्मण से अन्यन्त कटु वचन कहती है, यहाँ तक कि उन्हें भ्रातृघाती और लोलुप बताती है (देखिये वाल्मीकि अरण्य० सर्ग ४५) परन्तु तुलसी केवल कहते हैं—

मरम वचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लङ्घिमन मन डोला ॥

और रावण विजय के बाद जहाँ वाल्मीकि में राम स्वयं सीता को लाञ्छित करते हुए कहते हैं कि वे उन्हें सती नहीं मान सकते (देखिये युद्धकाण्ड सर्ग ११५) वहाँ तुलसी—

‘ तंहि कारन करुनानिवि, कहे कछुक दुर्वाद’

कहकर राम के शील-सौजन्य की रक्षा कर लेते हैं।

यही नहीं, तुलसी ने राम और उनके परिवार की मर्यादा की रक्षा करते हुए उसके सदस्यों की उग्रता को कम किया है। (लक्ष्मण वा० सर्ग २२, कौशल्या मार्ग ६१) फल यह हुआ कि तुलसी के चरित्रों का गठन स्वाभाविक होते हुए भी आदर्श हुआ है। ऐसा होने में यदि नए प्रकरणों को जोड़ने की आवश्यकता पड़ी है, तो

तुलसी ने ऐसे प्रकरण जोड़ भी दिए हैं। उदाहरण के लिए राम लक्ष्मण के शील-सौजन्य को प्रगट करने के लिए ही तुलसी ने ये पक्तियाँ लिखी है—

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ ।

गुरु पद पकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २२५ ॥

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा । सबही सन्ध्या बदनु कीन्हा ॥

कहत क्या इतिहास पुरानो । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥

मुनिवर सयन कोन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥

जिन्हके चरन सरोरुह लागी । करत विविध जप जोग विरागी ॥

तेइ दोउ बधु प्रेम जनु जीते । गुरु पद कमल पलोत्त प्रीते ॥

बारबार मुनि आज्ञा दीन्ही । रघुवर जाइ सयन तब कीन्ही ॥

चापत चरन लखनु उर लाँ । सभय सप्रेम परम सच्चु पाँ ॥

पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पोढे वरि उर पद जलजाता ॥

उटे लखनु निसि विगत सुनि, अरुण सिखा बुनि कान ।

गुरु ते पहलोहि जनतपति, जागे रामु सुजान ॥ २२६ ॥

इस प्रकार तुलसी ने परपरागत चरित्रों को संस्कृत एवं परिष्कृत करके हमारे सामने रखा है ।

विनयपत्रिका की एक परख

विनयपत्रिका में तुलसी के उन विचारों को ही स्तोत्रात्मक और गीतात्मक रूप मिला है जो उनके मानस की आधारभूमि है। परन्तु जहाँ मानस में उनका रूप वणनात्मक है या वे तर्क-समन्वित हैं, वहाँ विनयपत्रिका में उनका रूप भावात्मक है और वे सिद्धान्त तुलसी के प्रेम-विश्वास को पाकर जगमगा उठे हैं।

१. राम [ब्रह्म]—राम सच्चिदानन्द है। उनके दो रूप हैं—निगुण और सगुण। सगुण रूप में वे नरदेह-धारी भूप-रूप दाशरथि हैं—

अमल अनवय अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म

सुमिरामि नर भूप रूपं (विनय० ५०)

वे क्षीरसागर निवासी विष्णु भी हैं इसी से पुराणों में विष्णु के जितने अवतार हैं, वे सब प्रकारान्तर में राम के अवतार हैं—

उरग नायक तरुन सयन पकज नथन क्षीर सागर अयन सर्ववासी ॥

—(विनय ५५)

बामनाव्यक्त पावन परावर विभो

—(विनय ४९)

वृष्णि-कुल कुमुद राकेस राधा रमन कंस वंसाटवी धूमकेतू

—(विनय ५२)

बुद्ध अवतार बन्दे कृपाल (विनय ५२)

दितिमुत त्रास त्रमित निमिदिन-प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी

—(विनय ९३)

तुलसी राम के परे कुछ देखना ही नहीं चाहते। या वे राम को देखते हैं या रामभक्त (भागवत) को। वे विन्दुमाधव को भी राम कहते हैं (विनय ६१)। परन्तु यही राम विष्णु के भी पोषक, विष्णु पर भी बहे जाते हैं तो आश्चर्य होता है। परन्तु दोनों बात ही तुलसी के लिए ठीक है।

अवतार लेने के कारण तो अनेक हैं जिन्हें तुलसी ने मानस की रामकथा की भूमिका में रखा है, परन्तु विनयपत्रिका में भगवान के भक्तवत्सल रूप की ही प्रधानता होनी चाहिए थी। इसीलिये तुलसी यहाँ केवल एक कारण लेते हैं—

जब जब जग जाल व्याकुल करम काल

सब खल भूप भण भूतल-भरन

तब तब तनु वरि भूमि-भार दूरि करि

यापे मुनि सुर-साधु आखम सरन

—(विनय २४८)

२ जीव और ब्रह्म—तुलसी जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में यहाँ भी मानस की तरह अपेक्षा-भाव रखते हैं—

हैं जड़ जीव ईस रघुराया ।

तुम मायापति हैं बस माया ॥

(विनय० १७६)

यही जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध तात्त्विक निरूपण है । तुलसी इससे अलग जीव की परिभाषा देना नहीं चाहते ।

३—सृष्टि या जगत्—सृष्टि वस्तुतः राम-रूप है । यह माया (या मूल प्रकृति) का ब्रह्म पर आवरण मात्र ही है—

प्रकृति महत्तत्त्व शब्दादि गुण देवता व्योम मरुदग्नि अमलावु उर्वी ।

बुद्धि, मन, इन्द्रिय, दान, चित्तात्मा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी ॥

सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो ।

भुवन भुवदस कामारि वदित पदद्वन्द्व मदाकिनी जनक जिष्णो ॥

या राम स्वतः सृष्टि है—

आदि मध्यात भगवत त्व सर्वगतमीस ये ब्रह्मवादी ।

यथा पटततु घटमृत्तिका सर्पस्रग दारुकरि कनक कटकागदादी ॥

(विनय० ५४)

इसी सम्बन्ध से ब्रह्म जगत् का उपादान कारण भी है । कर्त्ता तो वह है ही ।

इसीलिए जहाँ तक हम इस सृष्टि (जगत्) को राम से भिन्न समझते हैं, वहाँ-वहाँ हम गलती करते हैं । है केवल एक रामतत्त्व । राम के सम्बन्ध से तो जगत् शून्य मात्र है—

जग नभ बाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुवों के से धोरहर देखि तू न भूलि रे ॥

(विनय० ६६)

इस जगत् का सुख-दुख “सपनों के सताप” की तरह है—

सोवत सपने सहै ससृति सन्ताप रे ।

(विनय० ७३)

इस सताप के मूल में ब्रह्म और जगत् की द्विविध सत्ता के सम्बन्ध में भ्रम है इस भ्रम को तुलसी विस्तार के साथ इस प्रकार रखते हैं—

केसव कहि न जाइ का कहिए ।

देखत तव रचना विचित्र अति समुक्ति मनहि मन रहिए ।

(विनय० १११)

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ।

जद्यपि मृषा सत्य भास जत्र लागि नहि कृपा तुम्हारी ॥

अथ अवियमान जानिय ससृति नहि जाइ गोसाई ।

बिनु बाँधे गिज हठ सठ परवस परचो कीर की नाई ॥

सपने व्याधि विविध बाधा भइ मृत्यु उपस्थित आई ।

वेद्य अनेक उपाय करहि जागे बिनु पीर न जाई ॥

(विनय० १२०)

८—माया—इसी भ्रम को माया कहा है। यही जीव का बधन है। भगवान् की कृपा से ही इसका बाध होगा—

तुलसीदास यहि जीव मोहरजु जोइ बॉभ्यो सोइ छोरै ॥

(विनय० १०२)

इस माया का पाश अत्यन्त कडा है, भगवान् की कृपा के बिना इससे छूटना असम्भव है । तुलसी कहते हैं—

माधव, असि तुम्हारि यह माया ।

करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जव लगि करहु न दाया ॥

सुनिय गुनिय समुभिय समुभाइय दसा हृदय नहिं आवै ।

जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै ॥

ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य भूठ कछु नाही ।

तुलसीदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोम मन माही ॥

(विनय० ११६)

जीव ब्रह्म विषयक द्वैत के नाश से ही माया का परिहार हो सकता है । इसके लिए साधन है साधुसेवा और उसके द्वारा रामभक्ति की प्राप्ति—

सेवत साधु द्वैत भय भागे ।

श्री रघुवीर चरन लय लागे ॥

(विनय० १३६)

इसके बाद है आत्मबोध या ज्ञान । तुलसी ने ज्ञान को भक्ति की भूमिका ही माना है, यद्यपि इसके बिना भी काम चल सकता है और रामकृपा के बिना “ज्ञान” की भी प्राप्ति असम्भव है :—

रामकृपा बिनु सुनु खगराई । जगनि न जाइ राम प्रभुताई ॥

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

यहाँ यह “जानना” या “परतीती” ही ज्ञान है। ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्धों को जाने बिना न राम की प्रभुता ही पूरी तरह हृदयस्थ होगी, न भक्तिभाव का उदय ही होगा। यहाँ कवि साधक को दर्शन की गहन गुत्थियों में उलझा देना नहीं चाहता, परन्तु अज्ञानी भक्त किस काम का? ज्ञानी भक्त ही तुलसी का आदर्श है।

परन्तु ज्ञान का साधन कठिन है—

जोग मुख विवेक विरति वेद विहित करम ।
करिबे कहै बहु कठोर सुनत मधुर नरम ॥

(विनय० १३१)

इसीसे तुलसी भक्ति और उसके साधनों को श्रेय देते हैं जो कठिन तो हैं, परन्तु भगवत्कृपा होने पर सुलभ भी है—

रघुर्गति भक्ति करत कठिनाई ।

कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥

यद्यपि भगवत्प्राप्ति के अनेक साधन हैं—

नाहिन आवत आनभरोसो ।

यहि कलिकाल सकल साधन तरु है खम फलनि फरो सो ॥

तप तीरथ उपवास दान मुख जेहि जो रुचै करौ सो ॥

पाएहि पै जानियो करम फल भरि भरि वेद परोसो ॥

आगम विधि जप जाग कैरत नर सरत न काज खरो सो ।

सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो ॥

काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरो सो ।
 बिगरेत मन सन्यास लेत जल नावत आय धरो सो ॥
 बहुमत सुनि बहु पथ पुराननि जहाँ तहाँ भगरो सो ।
 गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ॥

(विनय० १७३)

परन्तु जैसा उपर्युक्त पद मे कहा गया है, तुलसी के मतव्य मे राम-भक्ति पथ ही राजपथ है जिम पर सर्वसाधारण भी चल सकते हैं और जिस पर चलने के लिए अधिक सम्बल-बल की आवश्यकता नहीं है। फिर प्रश्न यह होता है कि रामभक्ति ही क्यों ? तुलसी ने इसके उत्तर मे राम के स्नेह, शील, भक्तवत्सलता, दयादृता का बार-बार उल्लेख किया और रामचरित के ऐसे स्थलों का बार-बार उदाहरण स्वरूप उद्धाटन किया जिनमे राम के ये गुण चरितार्थ हुए हैं। इस सम्बन्ध मे तुलसी की भावधारा का पता अनेक पदों से चल सकता है—

देव दूसरो कौन दीन को दयालु ।
 सील निधान सुजान सिरोमनि सरनागत प्रिय प्रनतपालु ॥
 को समर्थ सर्वज्ञ सकल प्रभु सिय सनेह मानस मरालु ।
 को साहिव किए मीत प्रीति खग निसिचर कपि भील भालु ॥
 नाथ हाथ नाना प्रपच सब जीव दोष गुन करम कालु ।
 तुलसिदास भलो पोच रावरो नेकु निरखि कीजै निहालु ॥

(विनय० १५४)

जग सुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत,
 सब को दाहिनो दीनबन्धु काहु को न बाम ।

आरत हरन सरनद अतुलित दानि
प्रनतपाल कृपालु पतित पावन नाम

(विनय० ७७)

सीलसिंधु सुन्दर सब लायक समरथ सद्गुन खानि हौ ।
पाल्यो है पालत पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानि हौ ॥

(विनय० २२३)

विनयपत्रिका राम के गुणशील के गौरव-गान के पदो से भरी हुई है ।

५—भक्ति के साधन—भक्ति के अनेक साधनों का वर्णन मानस मे विस्तारपूर्वक लिखा गया है, परन्तु प्रसगतः विनय-पत्रिका मे भी इनका वर्णन है । मुख्य साधन हैं :—

(१) भजन (नामस्मरण)

सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, बूढ़ मन बारबार
सकल सौभाग्य सुखखानि जियजानि सठ मानि विस्वास बद बेदसार

(विनय० ४६)

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।

(विनय० ६५)

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे ।
घोर भव नीरनिधि नाम निजु नाव रे ॥

एकहि साधन सब रिधि साधि रे ।
प्रसे कलि रोग जोग सयम समाधि रे ॥

(विनय० ६६)

(२) शरणागत भाव

नाहि नै नाथ अवलम्ब मोहि ग्रान की ।

करम मन वचन पन सत्य करुनानिधे, एक गति राम भवदीय पदग्रान की ॥

(विनय० २०९)

(३) चरित्र-श्रवण, मनन, कीर्तन (यशगान)

(४) सत्सग

रघुपति भगति सत सगति बिनु को भवत्रास नसावै ।

(विनय० २२१)

बिनु सत्सग भगति नहि होई ।

(विनय० १३६)

(५) संत-स्वभाव की ओर सक्रमण

देहि सत्संग निज अंगश्री रंगभष-भंग करन सरन सोकहारी ।

×

×

×

साधुपद सलिल निर्धूत कल्मष सकल स्वपव यवनादि कैवल्य भागी ।
शान्तनिरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी ।

×

×

×

(विनय० ४५७)

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौगो ।

श्री रघुनाथ कृपाल कृपा ते सत स्वभाव गहौगो ॥

ययाताम सतोष सदा काहू सो कछु न चहौगो ।

परहित निरत निरतर मन-क्रम-वचन नेम निबहौगो ॥

परुष वचन अति दुसह खवन करि तेहि पावक न दहौगो ।

विगत मान सम सातल मन परगुन नहिँ दोष कहौगो ॥

परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।

तुलसिदाम प्रभु यहि पय रहि अविचल हरिभक्ति लहौगो ॥

(विनय० १७२)

(६) राम के स्वरूप का ध्यान (स्वरूपासक्ति) । विनय-पत्रिका में राम के सौन्दर्य के अनेक पद हैं यद्यपि तुलसी के कुछ अन्य ग्रंथ (जैसे मानस, गीतावली) स्वरूपासक्ति के सुन्दरतम उदाहरण उपस्थित करते हैं ।

(७) उन तीर्थों आदि का सेवन जिनका सम्बन्ध राम के चरित्र से है, जैसे गंगा, चित्रकूट ।

(८) ब्राह्मण-सेवा

(९) आत्मग्लानि की भावना

कैसे देखें नार्थहिँ खोरि ।

काम लोलप भ्रमत मन हरिभगति परिहरि तोरि ॥

बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत मूढता असि मोरि ॥

(विनय० १५८)

रामचन्द्र रघुनाथक तुम सो हौ विनती केहि भाँति करौ ।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौ ॥
पर दुख दुखी सुखों पर सुख ते मन्तसील नहिँ हृदय धरौ ।
देखि आन की विपति परम सुख सुनि सम्पति बिनु आगि जरौ ॥
भक्ति विराग ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकन लोग फिरौ ।
सिव सबेस सुखधाम नाम तब बेचि नरकप्रद उदर भरौ ॥
जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जलसीकर सम मुनत लरौ ।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुनगिरि सम रज ते निदरौ ॥
नाना वेष बनाइ दिवस निसि परहित जेहि तेहि जुगुति हरौ ।
एक पल न कबहुँ अडोल चित हित दे पद सरोज सुभिरौ ॥
जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लागि अवरि भरौ ।
तुलसिदास प्रभु कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यो भवसिंधु तरौ ॥

(विनय० १४०)

(१०) शिवभक्ति

शिवभक्ति को रामभक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका बना देना तुलसी की मौलिकता और सार्वभ्राह्मकता का विशिष्ट उदाहरण है। तुलसी शिव को सम्बोधन करके करते हैं—

बिनु तव कृपा राम पद पकज सपनेहु भगति न होई ।

(विनय० ९)

(११) हनुमान-भक्ति

श्रेष्ठ भागवत के नाते हनुमदाश्रय भी नितान्त आवश्यक है। मानस के सुन्दरकांड, बाहुक, कवितावली और विनयपत्रिका के हनुमान-सम्बन्धी स्थल तुलसी की हनुमान-भक्ति के उदाहरण हैं। तुलसी का कथन है जिस पर हनुमान प्रसन्न हो जाते हैं उस पर शिवपार्वती, सीताराम सब प्रसन्न रहते हैं। अतः रामभक्ति की भूमिका के रूप में शिवभक्ति की तरह हनुमान भक्ति भी उपादेय है। तुलसी स्मार्त वैष्णव थे। वह इस नाते पञ्चदेव उपासक थे। विनय-पत्रिका के आरम्भिक पदों में उन्होंने इन सभी देवताओं की भक्ति को रामभक्ति की प्राप्ति का साधन बना दिया है। प्रत्येक उपास्य के प्रति प्रणतिपाद हो तुलसी उससे रामाश्रित होने का ही वरदान माँगते हैं। इस प्रकार तुलसी ने बहुदेवतवाद को रामोन्मुख करके एकदेवतवाद (रामवाद) बना दिया है।

सन्देह में, यही प्रमुख भक्ति के साधन है। परन्तु तुलसी का इस सब में बहुत कम आग्रह है कि रामभक्ति के और कोई साधन है ही नहीं। जो भी कुछ बन पड़े, जो भी कुछ भगवान् की ओर ले जायें, वह सब रामोन्मुख होने के नाते रामभक्ति और भगवद्प्राप्ति का साधन है।

तुलसी के अन्य ग्रन्थ

रामचरितमानस तुलसी का सबसे महान् ग्रन्थ है और साधारणतः तुलसी की काव्यप्रतिभा और उनके भक्तिभाव को उसीसे पूर्णतः समझा जा सकता है। परन्तु यह बात नहीं कि तुलसी की प्रतिभा मानस पर ही समाप्त हो गई। उनके दस-बारह ग्रन्थ और उपलब्ध हैं।

इन ग्रन्थों को हम कई श्रेणियों में रख सकते हैं :—

- (१) रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ—विविधावली, गीतावली, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी मंगल, रामलला नहछू।
- (२) कृष्णकथा सम्बन्धी ग्रन्थ—कृष्ण-गीतावली।
- (३) शिवकथा-सम्बन्धी ग्रन्थ—पार्वती मंगल।
- (४) भक्ति ग्रन्थ—विनयपत्रिका।
- (५) अन्य मुक्तक रचनाएँ जो दोहावली, वैराग्य सदीपिनी आदि में संग्रहीत हैं।

इन ग्रन्थों में से रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थ इस विचार से महत्त्वपूर्ण हैं कि उनमें तुलसी ने रामकथा को अनेक प्रकार से विकसित किया है। कथा का आधार वही मानस है, वही वाल्मीकि रामायण। पहले चार ग्रन्थों में रामकथा का सम्पूर्ण रूप आ गया है परन्तु अत्यन्त स्फुट रूप से। बरवै रामायण में ३०-४० बरबे में सारी

रामकथा कह दी गई है—सीता के सौन्दर्य का वर्णन नवीनता उत्पन्न करता है। रामाज्ञा प्रश्न में वही कथा दो बार सूचनिका रूप में उपस्थित है। काव्यकला का विशेष विकास इन ग्रन्थों में नहीं है न रसपुष्टि की ओर ही ध्यान दिया गया है। कवितावली और गीतावली में रामकथा रमात्मकता से पुष्ट होकर कई नवीनताओं के साथ हमारे साथ आती है। पहले ग्रन्थ में राम के पौरुष, सौन्दर्य और शौर्य को केन्द्र बनाया गया है। और सारे ग्रन्थ में सुन्दरकांड को ही विशेष विकसित किया गया है। दूसरे ग्रन्थ में सूरदास के प्रभाव से राम के वात्सल्यपूर्ण चित्रण का प्रयत्न है, माताओं की दुःखकथा भी है और अन्त में राधाकृष्ण की तरह रामसीता भी हिंडोले पर बसतबिहार करते दिखालाई पड़ते हैं। यह रामकथा का कृष्णकथा के ढंग पर भावात्मक विकास है। रामलला नहछू और जानकी मंगल खण्डकाव्य है—पहले मैंने लोकभावना का आश्रय ले राम के विवाहोपरांत नखछेदन (नहछू) का प्रसंग उपस्थित किया है, दूसरे में सीता-परिणय, स्वयंस्वर एव विवाह की कथा स्वतन्त्र रूप से कही गई है।

कृष्ण गीतावली में कृष्णकथा तो विशेष रूप से नहीं मिलती परन्तु उनके कुछ अश अवश्य सामने आते हैं।

पार्वतीमंगल का विषय वही है जो बालकांड के शिवचरित के उत्तरार्द्ध का विषय है। तुलसीदास कालिदास के कुमारसम्भव से विशेष रूप से प्रभावित जान पड़ते हैं।

विनयपत्रिका इन ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना तुलसी के धार्मिक एव अध्यात्मजगत् का अध्ययन नहीं किया जा सकता

अन्य रचनाएँ तुलसी के विचारों और उनकी भक्ति के स्वरूप

को स्थिर करने के लिए काम में लाई जा सकती है। काव्य की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं है।

इन ग्रन्थों में हम तुलसी को कई रसों में प्रवेश करते पाते हैं। मुख्य रस जिनका निरूपण हुआ है, चार है—१ शृंगार, २ वात्सल्य, ३ करुण, ४ भयानक। अन्य रसों के उदाहरण भी मिल जायेंगे, परन्तु विशेष महत्त्व इन्हीं का है।

(१) विनयपत्रिका

रामचरितमानस के बाद तुलसी के ग्रन्थों में सबसे लोकप्रिय और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विनयपत्रिका ही है। इसमें सन्देह नहीं कि यह तुलसी की वृद्धावस्था की रचना है काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी यह रामचरितमानस से प्रौढ़ है। तुलसी की भक्तिभावना के विकास और उनके धार्मिक सिद्धान्तों का अध्ययन करनेवालों के लिए यह ग्रन्थ मानस की भोजिनी ही बहुमूल्य है।

विनयपत्रिका के दो भाग किये जाते हैं एक भाग स्तोत्रों से भरा पड़ा है, दूसरा सुन्दर गीतों से। गीतों में से कुछ तो दैन्यभावना के प्रकाशन और भक्ति के स्वरूप को स्थिर करने के लिए लिखे गये हैं और कुछ कवि के आत्मजीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इन तीनों अंगों में भक्तिभावनावाले पद ही सबसे अधिक महत्त्वशाली हैं। विनयभावना के इतने सुन्दर पद सूरसाहित्य में भी नहीं मिलेंगे। तन्मयता, आत्मविस्मृति, भाव सगठन और गीतात्मकता—गीति काव्य के सभी अंगों और विशेषताओं से पुष्ट तुलसी का यह काव्य हिन्दी की अमूल्य निधि है।

जैसा हम ऊपर कह आये है काव्य की दृष्टि से स्तोत्र भाग विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। शंकर का एक स्तोत्र इस प्रकार है—

देव मोहतम तरणि, हर, रुद्र, शंकर शरण,
हरणभय शोक लोकाभिराम ।

बालशशिभाल, सुविशाल लोचन कमल
काम शतकोटि लावण्यधाम ॥

कवु-कुन्देन्दु कर्पूर-विग्रह रुचिर
तरुण रवि कोटि तनु तेज आजै ।

भस्म सर्वाङ्ग, अर्द्धाङ्ग शैलात्मजा
व्याल नृपकाल-माला विराजै ।

यह संस्कृत स्तोत्रों का संस्कृत-हिन्दी मिला खिचड़ी रूप है। धर्म-भावना की दृष्टि से यह चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण हो यदि तुलसी इनकी रचना नहीं करते तो उनका साहित्यिक महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। हाँ, धर्मभावना की दृष्टि से इनका महत्त्व यह है कि इनमें प्रत्येक देवता का गुणगान करके कवि अंत में राम की भक्ति माँगता है—इस प्रकार सवदेववाद का परिहार रामवाद में हो जाता है। जिन देवी-देवताओं और अवतारों पर स्तोत्र कहे गए हैं वे हैं गणेश, शंकर, पावती, गंगा, हनुमान, भैरव, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कालिका, विन्दुमाधव, हरिहर। तुलसी सब की प्रशंसा करते हुए भी राम का नाता नहीं भूलें हैं और उन्होंने विचित्र ढंग से अपनी आनन्द भक्ति मर्यादा बनाये रखी है। इससे उनकी सहनशीलता और सामञ्जस्य बुद्धि पर प्रकाश पड़ता है।

विनयपत्रिका की वास्तविक महत्ता तो उनके दैन्यपूर्ण-विनय भक्ति के पदों के लिए है जिनमें स्वामी सेवक या आराधक-आराध्य

के किसी भी सम्बन्ध के मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक पहलू को नहीं छोड़ा है। इन पदों के भीतर से बहती हुई तुलसी की अन्तःधारा का पकड़ना ही समीक्षक का काम है। तुलसी की भावधारा का आरम्भ वैराग्य भावना से होता है। वैराग्य इसलिए कि इस जगत् की मायावशी परिस्थिति को वह समझ गया है। बिना माया के डोरे सुलभाए शान्ति की प्राप्ति नहीं होगी। यह माया रघुनाथ की दासी है। तुलसी कहते हैं—

माधव ! अस तुम्हारि यह माया
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहि, जव लागि करहु न दाया ॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दया हृदय नहि आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव विपति सतावै ॥
ब्रह्म पित्रूष मधुर सीतल जौ पै मन सो रस पावै ।
तौ कत भृगजल-कृप विषय कारन निमि बासर धावै ॥
जेहि के भवन अवल चितामनि सो कह काच बटोर ।
सपने परवस परचो जानि देखत कहि जाइ निहोरै ॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठि कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरिकृपा भिटै भ्रम यह भरोस मनमाहीं ॥

इस मतव्य पर पहुँच कर साधक यदि शरणागत भाव से भगवान् के पास पहुँचता है और कहता है—

सुखसाधन हरि विमुख वृथा,
जैसे श्रमफल घृत हित मये पाय ।

इस 'हरि विमुखता' को छोड़कर वह 'हरि उन्मुख' होने का प्रण करता है—

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं ।

राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर न डसैहौ ॥

स्वयं अपनी ओर से जो वह तत्परता दिखाता है उसका आधार उसका राम में विश्वास है कि वे रक्षा करेंगे। वह जानता है कि मनुष्य क्या, उसका प्रयत्न क्या, परन्तु उसे भगवान् के शरणागत-रक्षा प्रण में विश्वास है। तब कोई चिंता नहीं। इसी विश्वास के साथ वह शरण जाता है—

कृपासिधु ताते रहौ निसि दिन मन मारे ।

महाराज लाज आपुही निज जाँघ उधारे ॥

मिलै रहै, मारच्यो चहै कामादि सँघाती ।

मो बिनु रहैं न, मैरियै जारे छल छाती ॥

×

×

×

बारक बलि अब तो किये कौतुक जन जी को

अनायास मिटि जाइगो सकट तुलसी को

वही मन में दीनता का भाव धारणकर भगवान् के चरणों में पड़ जाता है—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

काको नाम पतित पावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?

कौने देव बराय विरदहित, हठि हठि अधम उधारे ?

खग, मृग, व्याध, पषान, विटप, जड़, जवन, कवन सुरतारे

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया विवस विचारे

तिनके हाथ दास तुलसी 'प्रभु, कहा अपनपौ हारे ?

यह दीनता क्यों है—इसलिए कि वह तो “दोषो की मोह” है, फिर गर्व किस बात का ?

मेरे अध सारद अनेक जुग,

गनत पार नहि पावै ।

तुलसीदास पतितपावन प्रभु,

यह भरोस जिय आवै ॥

अपने प्रभु की स्वभावतः पतितपावन प्रवृत्ति को समझ कर ही तुलसी अपने मन में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ करते हैं और इष्टदेव से उनकी पूर्ति की आशाएँ रखते हैं—

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक वरिहौ नाथ सीसे मेरे ।

जेहि कर अभय किए जन आरन बारक विवस नाम टेरे ।

माया-जाल की जटिलता, मन के प्रबोध, माया से द्वन्द्व, दैन्यभाव से ईश प्रार्थना—इन सब के सम्बन्ध में अनेक पद विनयपत्रिका में बार-बार आते हैं। इन्हीं के कारण तुलसी का काव्य अध्यात्मभाव की सर्वोच्च भूमि पर उठ गया है। इसका सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि रामचरितमानस की रचना के बाद भी तुलसी के आध्यात्मिक विचारों में बराबर विकास होता गया है और विनयपत्रिका में हमें उनकी अध्यात्म-भावना पूर्ण विकसित रूप में मिलती है। तुलसी की रामचरितमानस की भक्ति ज्ञान और कर्म को साथ लेकर चलती है। उसे हम ज्ञान कर्म समन्वित भक्ति कह सकते हैं। विनयपत्रिका की भक्ति अनन्य भक्ति है। वह न किसी दूसरे देवता का आश्रय लेती है न किसी दूसरी उपासना-पद्धति का। ज्ञान और कर्म पीछे छूट गये हैं। तुलसी उनकी ओर

मुड़कर भी नहीं देखते। उनके लिये केवल भक्ति ही एकमात्र साधना है—यही नहीं, भक्ति ही साध्य हो गई है। स्वयं राम से भी वे रामभक्ति की ही याचना करते हैं। भक्ति-साधना की दृष्टि से यह स्थिति सर्वोच्च है। इस अन्तिम रचना में तुलसी ने सारे नाते तोड़ कर एकमात्र राम से नाता जोड़ा है।

इस ग्रन्थ का सदेश मानस से भी ऊँचा है। इसमें तुलसी जीवन-निर्माण के उस अत्यन्त उन्नत आदर्शवाद को सामने रखते हैं जिसकी नींव नैतिकता में है। सतोष, परहित चितन, मृदुसलाप, रागद्वेष, दीनता, मानहीनता, सुख-दुख में समबुद्धि—ये कुछ ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपादेय हैं। तुलसी इसी नैतिक जीवन का उपदेश देते हैं—

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु

तौ तजि विषय विकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौँ सोइ करु ॥

सम, सतोष, विचार विमल अति, सतसगति ए चाहि दृढ करि धरु ॥

काम, क्रोध अरु लोभ माह मद, राग द्वेष निश्चय कर परिहरु ॥

स्रवन कथा, मुखनाम, हृदयहरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ॥

नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग-रूप-भूप सीतावरु ॥

इहै भगति वैराग्य ज्ञान यह, हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु ॥

तुलसीदास सिवमत मारग, यहि चलत सदा सपनेहु नाहिँ न डरु ॥

भले ही रामभक्ति किसी को अमान्य हो परन्तु इसमें तो कोई वितर्क उपस्थित ही नहीं कर सकता है कि ऊपर कहा हुआ नैतिक मार्ग सर्वसाधारण को शान्ति और सुख का परिचय नहीं करा सकता।

(२) कवितावली

मानस की तरह कवितावली भी रामकथा-ग्रन्थ है। कथा में विशेष अन्तर भी नहीं है, परन्तु यहाँ कथा विस्तार से न देकर चुने हुए अशो को उपस्थित किया गया है। सारी कथा छप्पय, कवित्त, सवैया और घनाक्षरी छन्दों में है जिनमें परुष रसो को ही विशेष विकास हो सकता है। अतः कवि ने ऐसे ही प्रसंग चुन लिये हैं।

बालकाण्ड की कथा इस प्रकार आरम्भ होती है कि दशरथ बालक राम को गोद में लेकर बाहर निकलते हैं। इसके बाद कवि बालक राम का सौन्दर्य और उनकी क्रीड़ा को वीरता का पुट देकर सामने रखता है—

पद पकज मजु बनी पनहीं,
धनुही सर पकज पानि लिये ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं,
सरजू तट चौहट हाट हिये ॥

स्वयंवर, दृल्हा राम की शोभा, परशुराम-सवाद सब प्रसंग मानस की भोंति ही है परन्तु सत्तेप में। कथा का विकास सकेतो में हुआ है। इसीसे अयोध्याकांड की कैकेयी-मथरा प्रसंग, वरदान प्राप्ति आदि मार्मिक कथा का लोप हो गया है। कथा का आरम्भ ही इस छन्द से होता है—

राजिव लोचन राम चले
तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ।

अतः पूर्व का कथा-प्रसंग आ ही नहीं सकता। बनवासी रामसीत

का सौन्दर्य, बनवासी स्त्री-समाज की सीताराम विषयक जिज्ञासा, केवल प्रहसन इतने पर ही अयोध्याकांड समाप्त हो जाता है। भरत की सारी कथा सामने ही नहीं आती। आरण्यकांड में एक ही छंद है—

पचवटी बर पर्ण कुटी तर बैठे है राम सुभाय सुहाए ।

सोहै प्रिया, प्रिय बन्धु लसै, तुलसी सब अग घने छवि छाए ॥

देखि मृगा मृगनैनी कहे, प्रिय बैन ते प्रीतम के मन भाए ।

हेम कुरग के सग सरासर सायक लै रघुनायक धाए ।

इसी तरह किष्किंधाकांड में भी एक ही छंद है जिसमें हनुमान् के कूदने का चित्रण है। वास्तव में विशेष विस्तार सुन्दरकांड को मिला है परन्तु विषय-विस्तार और रस निरूपण को। कथा तो यहाँ भी बहुत सक्षेप में है। अशोकवाटिका उजाड़ने से लेकर लकादाह तक का ओजस्वी वर्णन है। रसोत्कृष्टता में हम कथा-भाग को कभी भूल भी जाते हैं। कुछ कवित्तो में हनुमान् के लौटने पर कवियों की प्रसन्नता और अगद का वाग उजाड़ने का वर्णन कर कांड को समाप्त कर दिया गया है। लकाकांड का पूर्वार्द्ध तो विकसित है जिसमें त्रिजटा-सीता सवाद, अगद-प्रसंग, मदोदरी की सीख, रावण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति से मूर्च्छित होना और हनुमान् की सजीवनी लाना घटनाएँ वर्णित हैं, परन्तु शेष युद्ध और रावण-बध केवल दो ही छंदों में है। इस प्रकार कथा-विकास में यहाँ भी आश्चर्य-जनक विपमता है। उत्तरकांड में कथा है ही नहीं। वह मुक्तक सग्रह-मात्र है जिसके विषय ये हैं—१. दैन्य प्रदर्शन, २. बाहुरोग (बाहुक), ३. मीन की सनीचरी का उत्पात, ४. महामारी और उसके सम्बन्ध में शंकर की महिमा और स्तुति, ५. आत्मजीवन, ६. रामस्तुति। सारे ग्रन्थ में एकता लाने का प्रयास नहीं है। यद्यपि

हनुमान का चरित्र ग्रन्थ में विशेष व्याप्त है। कदाचित् तुलसी ने सोचा हो कि हनुमान सम्बन्धी कोई रचना नहीं हुई और उनके बाहु रोग ने उन्हें यह अवसर दिया हो कि वह हनुमान के शौर्य की प्रतिष्ठा कर सकें।

कवितावली में शौर्य और मर्यादा की भावना का उत्कर्ष है और इसीलिये लकादहन सारे ग्रन्थ के अन्तर्गत सब से प्रधान घटना है। इसे कवि ने अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा से प्रस्फुटित किया है। रामचरितमानस में भी वह घटना इतनी शक्तिसमन्वित नहीं। मानस प्रबन्ध काव्य है, अतः वहाँ चरित्र-चित्रण और वस्तु-निर्वाह की आवश्यकता है। तुलसी के मानस के सुन्दरकांड का केन्द्र हनुमान नहीं, सीता है, वियोगी अशोक विटपस्थ सीता। यही वह स्थल है जहाँ हमें सीता के मनोविज्ञान का परिचय मिलता है। परन्तु कवितावली में कथा विशेष रूप से कही ही नहीं गई है, वह शक्ति और शौर्य के भावनात्मक विकास के रूप में इंगित-मात्र है। अतएव इसमें चरित्र-चित्रण और वस्तु-निर्वाह की ओर कवि ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। घटनाओं के निरूपण में रस की उपलब्धि कराना श्रेष्ठ कवि का काम है। कवितावली का लकादहन प्रसंग रसोद्वेग की दृष्टि से तुलसी की समस्त रचनाओं में अग्रगण्य है। प्राचीन शास्त्रकारों के आदर्शों के अनुसार जहाँ रस की सृष्टि है वहाँ शब्द चित्रों का भी निरूपण है। सुन्दरकांड में रस का अन्तरंग और बाह्यरूप दोनों प्रकार का स्वरूप अद्भुत है।

कवितावली के सुन्दरकांड का रस वीर नहीं भयानक है। इस दृष्टि से कवितावली महत्त्वपूर्ण है। इसमें वीर और रौद्र रस गौण रूप से आये हैं। ये केवल भयानक के संचारी भाव के रूप में मिलते हैं। लकादहन और हनुमान का लौट आना—यही महत्त्वपूर्ण रस-

पूर्ण स्थल हैं। कवितावली में आरम्भ से ही तुलसी ने राम के शौर्य की प्रतिष्ठा की है, वह हनुमान के विक्रम की वीथिका हो गई है। रौद्ररस हनुमान के अपमान की प्रतिक्रिया के रूप में है। वीर भाव का स्थायी अंग उत्साह इतना बलवान नहीं है जितना क्रोध— इसके साथ तुलसी ने रस निरूपण में यह विशेषता रखी है कि रस के व्यापक संचरण के साथ-साथ केवल परम्परागत वस्तुओं का निर्देशमात्र ही नहीं किया है, साथ ही वर्णन वैचित्र्य, परिस्थितियों का चित्रण, स्पष्ट शब्द और भाषा को उपस्थित करने का भी प्रयत्न किया है। भयानक का इतना सजीव वर्णन लकाकांड में भी नहीं हो पाया।

(३) श्रीकृष्ण गीतावली

तुलसीदास की कृष्णकथा श्रीकृष्ण गीतावली पर सीमित है परन्तु अध्ययन करने पर स्पष्ट होगा कि ६१ पदों में केवल चार प्रसंगों पर फुटकर पद सप्रहीत है—१. बालकेलि पद, २ भ्रमर-गीत और ऊधो-गोपी-सवाद, ३ नयन के पद (विरह), ४ द्रौपदी चीरहरण। इनके अतिरिक्त कृष्ण के सौन्दर्य और इन्द्रगर्वहरण पर भी २-४ पद हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी ने कृष्णकथा को प्रबन्ध के रूप में नहीं रखा, वे केवल मार्मिक प्रसंगों पर लेखनी उठाते हैं और सभी विषयों में सूर के ऋणी हैं। प्रसंगों में ही नहीं—भाषा शब्द गठन, भावविकास, यही नहीं, कितने ही पदों के आधे या अन्तिम पंक्ति को छोड़कर शेष के लिए सूर के अपहरण के दोषी ठहरेंगे। तुलसी की इस रचना को सूर की रचना से मिलाने पर इसकी समस्या का हल हो सकता है। कितने ही पदों में तुलसीदास के

स्थान पर सूरदास रख देने से पद सूरसागर में मिल जायगा। भाषा और मूर्तिमत्ता सभी में सूर का इतना अनुकरण है कि सहज ही कवि सूर की प्रौढ़ता पर पहुँच जाता है। इसीसे यह रचना राम गीतावली से उत्कृष्ट दीख पड़ती है। केवल बाल-लीला का एक पद तुलसी के व्यक्तित्व को प्रगट करता है—

“छोटी भोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरी कै तू दे री मैया”

“लै कन्हैया” “सो कब १” “अबहि तात”

“सिगरियै हो ही खैहौ, बलदाऊ को न दैहौ”

“सो क्यों भट तेरे कही, कहि इत उत जात”,

बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,

गोपीजन महारि मुदित पुलकित गात

नपुर की धुनि किंकिन के कलरव सुनि

कूदि-कूदि किलकि-किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात

तनियों ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस,

मुनिमन हरत बचन कहै तोतरात

तुलसी निरखि हरखन बरषत फूल भूरभागी

ब्रजवासी विबुध सिद्ध सिहात

इस वार्तालाप में नाटकीयता है, नवीनता है, परन्तु सूर के कृष्ण शिशु की वार्तालाप का माधुर्य और सारल्य कहाँ? इसी श्रेणी की एक कल्पना बालक राम के विवाह के प्रति उत्साह से सम्बन्धित है—

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।

ऐहँ सुत देखु बार कालि तेरे बबै ब्याह की बात चलाई ॥

डरिहँ सासु-ससुर चोरी सुनि, हँसिहँ नई दुलहिया सुहाई।

उबटों न्हाहु, गुहौ चोटियों, बलि, देखि भलो बर करिहि बडाई ॥
 मातु कह्यो करि कहत बोलिबै, भई बडि बारि कालि हौ न आई ।
 जब सोइबो तात यों सो कहि, नयन मीचि रहे पौढि कन्हाई ॥
 उठि कह्यो भोर भयो मँगुली द, मुदित महरि लखि आतुरताई ।
 विहँसा ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि रहे जननी उर धाई ॥

ऐसे दो एक स्थलो को छोड़कर और कहीं मौलिकता नहीं मिलेगी, परन्तु स्थलो के चुनाव में तुलसी का व्यक्तित्व और मर्यादा भाव बोलता है। तुलसी ने सयोगशृंगार, राक्षसवध, फाग-हिंडोल सभी प्रसंगों को छोड़ दिया है। स्पष्ट है कि उनकी अभिरुचि नहीं। ऊहात्मक एकांतिक विरह भी नहीं। नयन के प्रति एक ही पद कहा है। “मधुकर के प्रति” उक्तियों में भी कोई वैयक्तिकता नहीं है। वही सूर का प्रसंग पग-पग पर है। रचना का केन्द्र यह स्तोत्र जान पड़ता है जो विनयपत्रिका के स्तोत्रों के ढग का है—

गोपाल गोकुल-वल्लभी-प्रिय गोप गोसुत वल्लभ ।
 चरनारविन्द मह भजे भजनीय सुरमुनि दुलभ ॥
 घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहर ।
 किंजलक वसन किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकर ॥
 सिर केंकिपच्छ बिलोल कुण्डल अरुन वनरुह लोचन ।
 गुजावनस विचित्र, सब अंग धातु भवभय मोचन ॥
 कच कुटिल सुन्दर तिलक, भ्रू राका मयक समानन ।
 अपहरन तुलसीदास जस विहार वृद्राकानन ॥

कदाचित् विनयपत्रिका में कृष्ण को स्थान न मिला देखकर तुलसी को अलग ग्रंथ रचने की सूझी हो और विशेष मौलिकता का आग्रह हृदय की साधना की इस उच्चावस्था में न होता हो ।

ऊधो-प्रसंग में गोपियों के चरित्र में कुछ विशेषता लाने का

प्रयत्न दिखलाई पड़ता है । ऊधो की बात पर गोपियाँ कहती है—

आली ! अति अनुचित उतरु न दीजै ।

सेवक सखा सनेही हरि के जो कुछ कहें सो कीजै ॥

देसकाल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै,

कैं ममुभिव, कैं ये ममुमैहें, हारेहु याभि महीजै ॥

ऊधौ है बडे, कहें सोइ कीजै,

अलि, पहचानि प्रेम की परिमित उतरु फेरि नहि दीजै ॥

और वे कुब्जा से ईर्ष्या नहीं, कृष्ण के नाते प्रेम करती है—

सब मिलि साहस करिय सयानी

ब्रज आनिराहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूसरी रानी

बसै सुपाम, होहि सब फिर गोकुल रजधानी

महरि महर जीवहि सुख जीवन खुलहि भोहमनि खानी

कही है भली बात सब के मनमानी

प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन, सखि,

प्रीति रीति जग जानी

इन स्थलों को छोड़कर तुलसी के काव्य की दृष्टि से इस रचना का कोई महत्त्व नहीं । हाँ, यह उनकी धार्मिक विचारधारा और सहन-शीलता पर प्रकाश अवश्य डालती है ।

(४) रामलला नहछू

तुलसी ने इस ग्रन्थ में रामकथा को लोकभाषना के भीतर से देखने की चेष्टा की है । यही ग्रन्थ की मौलिकता का कारण है ।

तुलसी ने मानस मे राम के विवाह का अत्यन्त मौलिक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है । यहाँ उसी से सम्बन्धित दूसरा चित्र है । विवाह के उपरान्त राम का नखछेदन (नहछू) सस्कार किया जाता है । लोकगीत-छन्द सोहर ही नहीं लिया गया है, भावना भी शृंगार-मयी है जो जनरुचि में आकर्षित कर सकती है जैसे—

गोद लिये कौसल्या बैठी रामहि वर हो ।

सोभित दूल्हा राम सीस पर आचर हो ॥

नाउनि अति गुनखानि तौ बेलि बोलाई हो ।

करि सिंगार अति लोभ हौ विहसति आई हो ॥

कनन-चुनिन सो लसित नहरनी लिए कर हो ।

आनन्द हिय न समाइ देखि रामहि वर हो ॥

कथाभाग मे भृत्याओं का रूपवर्णन और दशरथ की शृंगार प्रधान परिहास प्रियता उच्छृङ्खलता जान पड़ती है परन्तु यह सब लोक-जीवन के भीतर से रामचरित को देखने का प्रयत्नमात्र है, अतः इसके लिए तुलसी को दोष नहीं, श्रेय ही मिलना चाहिये ।

(५, ६) बरवै रामायण और रामाज्ञा प्रश्न

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बरवै रामायण और रामाज्ञा-प्रश्न ये दो और ग्रन्थ हैं जो रामकथा को लेकर चलते हैं । दोनों मे सारी रामकथा फुटकर प्रसंगों के द्वारा उपस्थित की जाती है और कुछ-कुछ नवीन भाव-धाराओं और प्रसंगों को भी उपस्थित करती हैं जैसे बरवै रामायण मे सीता के सौन्दर्य का रीतिकाल के कवियों की नायिका जैसा वर्णन है । तुलसी के अन्य ग्रन्थों मे सीता मे दैवी

भावना का आरोप है, अतः उनके सौन्दर्य के चित्रित करने के समय-पूर्ण अद्भुत उत्प्रेक्षाओं से काम लिया गया है। यहाँ यह प्रच्छन्नता नहीं है—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
 हाथ लेत पुनि मुकता करत दौत ॥
 सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर ॥
 सीय अग, सखि, कोमल कनक कठोर ॥
 सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ ।
 निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ ॥
 बढे नयन, कटि, मृकुटि, भाल विसाल ।
 तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल ॥

यही नहीं, तुलसी सीताराम की विलासकेलि को भी इंगित करते हैं—

उठी सखी हँसि भिस करि कहि मृदु बैन ।
 सिय रघुवर के भये उनीदे नैन ॥

यह सब रीतिकालीन प्रभाव है जिसकी वेगवती धारा से तुलसी प्रयत्न करने पर भी एकदम अछूते नहीं रह सके हैं। कथा विशेष विकसित नहीं है—जान पड़ता है कथा के फुटकर प्रसंगों पर सांकेतिक रूप से लिख दिया गया है।

रामाज्ञा-प्रश्न में रामकथा दो बार उपस्थित की गई है पहली १—३ सर्ग तक, दूसरी ४—६ तक। कथा बाल्मीकि का अनुसरण करती है। विशेष मौलिकता नहीं है, न वर्णन में, न प्रबन्धात्मकता में। साहित्य की दृष्टि से इन कथाओं का कोई स्थान नहीं। सारी कथाओं

की सूचीमात्र उपस्थित कर देने से साहित्य का कोई श्रेय नहीं मिलता। प्रयत्न यह है कि प्रत्येक कार्य के लिए शुभ दिन भी बता दिया जाय और किस देवता का स्मरण करके कार्यारम्भ हो, यह भी कहा जाय—फिर कथा भी चलती रहे। इससे हाथ कुछ भी नहीं लगा। इन परवर्ती रचनाओं में तुलसी जन भावनाओं का राम की लोकप्रियता बढ़ाने के लिये इतना सत्कार करते हैं कि सभी बातों को स्थान दे देते हैं और शूत जैसे निकृष्ट कर्म के मंगल समय का भी विचार करते हैं—

परपुर वाद-विवाद जय, जन्म जुआ जय जानि ।

सुभिर सत्रु सूदन-चरन, सगुन सुमान जानि ॥

जान पड़ता है पहले ६ सर्गों की कथा की रचना कर तुलसी ने जाना कि ये तीन काम साथ-साथ चलाने में श्रेयस्कर नहीं हुए, अतः उन्होंने इस कथा को सहज कथा सूचनिका के रूप में (मानस के आधार पर) फिर लिखा। पहली कथा से दूसरी कथा इसी से अधिक सुचारु और सुगठित है। मानस में अनेक शब्द-समूहों और चरणों का योग कथा को रामचरितमानस की वीथिका दे देता है। अब उन्होंने कथा को समाप्त कर अलग से शुभकाज का दिन समय लिखा है (देखिये सप्तम सर्ग)। अतः में उन्होंने सारी रामकथा को शुभाशुभ पात्रों में बाँट दिया है।

रामाज्ञा-प्रश्न में कवि विशेष प्रयोजन से अपनी सामग्री को एक निश्चित ढंग पर रख रहा है अतः यह दूढ़ना ठीक नहीं होगा कि कथा का कौन अंग छूटा है, कौन नहीं। प्रश्नों का उत्तर कथा है, सगुन कैसा है, यही विचारने के लिये पांडित्यपूर्ण ढंग से इसकी रचना हुई है। रामकाव्य के विकास की दृष्टि से इसका कोई स्थान

(७, ८) पार्वती-मंगल और जानकी मंगल

पार्वती मंगल और जानकी-मंगल में कवि ने क्रमशः शिव-पार्वती विवाह और जानकी-राम विवाहोत्सव को ही अपना विषय बनाया है। मानस में यही प्रसंग विस्तारपूर्वक लिखे जा चुके थे, परन्तु गेय छन्दों में नहीं। तुलसी ने सोहर जैसे लोकप्रचलित छंद का आश्रय लिया और कदाचित् विवाहोत्सवों पर गाने के लिए इन रचनाओं की सृष्टि की। जानकी-मंगल की कथावस्तु में वाल्मीकि को आधार माना गया है और पार्वती-मंगल पर कुमारसंभव (कालिदास) का प्रभाव स्पष्ट है, परन्तु इससे यही स्पष्ट है कि मौलिक होते हुए भी तुलसी को मौलिकता का विशेष आग्रह नहीं है। वे रामभक्त के नाते रामसम्बन्धी वस्तु जहाँ होगी, वही से ग्रहण कर लेंगे। कथात्मक खंड-काव्यों में इन रचनाओं का स्थान अनुप्राण है।

(९) राम गीतावली

रामगीतावली में भी तुलसी ने रामकथा को ही अपना विषय बनाया है, परन्तु कथानुक के अंगों को चुनने, पदविन्यास छन्द, भावविस्तार आदि की दृष्टि से तुलसी सूर के काव्य के आभारी हैं। परन्तु जहाँ सूरदास ने अत्यन्त विस्तार से विशृङ्खल कथाएँ कही हैं, वहाँ तुलसी ने कथा की प्रबन्धात्मकता का ध्यान रखकर ही छंद कहे हैं। इसी से छोटा होने पर भी गीतावली अत्यन्त सुन्दर पद-काव्य बन सका है।

कथा का आरम्भ रामजन्म से होता है। पहले की परिस्थिति चित्रित न होने से वह अलौकिकता इस कथा में नहीं रहती जो

दूसरे ग्रन्थो मे है । अतः गीतावली मे राम के सहज बालक राज कुमार, युवा वीर राजपुत्र और महाराज राम की ही प्रतिष्ठा है । इसी भावना को ध्यान मे रख कर तुलसी ने कहा है—

महाराज, बलि जाऊँ, राम सुन्दर सब लायक ।

जातकर्म, छठी, नामकरण ये तीन सस्कार गीतावली मे मिलते है । शेष सस्कारो का वर्णन नहीं है । सूर का प्रभाव बालकांड के उन अशो तक सीमित है जहाँ तक विश्वामित्र आये है । परन्तु उनमे भी कवि ने छन्द, भावसृष्टि और संगीत के नवीन आयोजन किये है जैसे उनके राम राजा के बालक है, वे केवल भूप-बालको के साथ ही क्रीड़ा करने निकलते है—

खेलन चलिय आनंदकन्द ।

सखा प्रिय नृप द्वार ठाढे विपुल बालक वृन्द ॥
 तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास ।
 वपुन वारिद वरणि छवि जल हरहु लोचन प्यास ॥
 बन्धु बचन विनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि बाल ।
 ललित लघु सर पाप कर उर नैन बाहु बिसाल ॥
 चलत पद प्रतिविम्ब राजत अजिर सुषमा पुञ्ज ।
 प्रेमबस प्रति चरन महि मनु देत आसन कज ॥
 देखि परम विचित्र सुषमा चकित चितवहिं मात ।
 हरष विबस न जात कहि निज भवन विहरहु तात ॥
 देखि तुलसीदास प्रभु छवि रहे पल सब रोकि ।
 थकित निकर चकोर मानहुँ सरद इन्दु विलोकि ॥

इस प्रकार का ऐश्वर्य सूर मे भी वर्णित है परन्तु कहाँ सखाओं की

* प्रेम-पुकार, कहाँ बन्धु का विनीत बचन । बात राजकुमारो के योग्य है, मर्यादा और शील का चित्रण है, परन्तु वह सहज चमत्कार नहीं आ सकता जो सूर के बालकृष्ण के क्रीड़ा-विनोद में । यह तो परिस्थिति की विडबना है । इन नवीन परिस्थितियों के लिए ही तुलसी को नए चित्र गढ़ने पड़े हैं—

विहरत अवध वीथिन राम ।

सग अनुज अनेक सिमु नव नाल नीरद रयाम ॥

तरुन अरुन सरोज पद वनि कनकमय पदत्रान ।

पीत पट कटि तून वर कर ललित लघु धनुवान ॥

लोचनन को लहत फल छवि निरखि पुर नर नारि ।

बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥

राजकुमार है तो फिर खेल भी ऐसा-वैसा नहीं, राजकुमारो का ही खेल होना चाहिये, अतः चौगान खिलाया गया है—

राम लखन इक ओर भरत रिपुदमनलाल इक ओर भये ।

सरजु-तीर सम सुखद भूमि तल गनि गोइयाँ वोट लये ॥

कदुक-केलि कुसल हय चढि चढि मन कसि कसि ठोकि ठोकि खए ।

कर-कमलन विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिभए ॥

खेल खेल सुखेलन हारे ।

उतरि उतरि चुचकारि तुरगनि सादर जाइ जोहारे ॥

बन्धु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सुखारे ।

दिये बसन गज बाजि साजि सुभ साजि सुभाँति सँवारे ॥

मुदित नयन फल पाइ गाइ गुन सुर आनन्द सिधारे ।

अहित समाज राजमंदिर कहँ राम राय पगु धारे ॥

भोर फूल बीनबे को गये फुलवाई है ।
सीसन रे पारे उपवीत पीत पट कटि,
दोना बामकरन सलोने सवाई है ॥

परन्तु यहाँ सखी द्वारा सीता का उद्बोधन आदि नहीं । सीता स्वयं स्वकीया विश्रब्ध नवोद्गा नायिका चित्रित की गई है । कवि एक ही छंद में सब प्रसंग कह डालता है—

सखिन सहित तेहि अवसर विधि सजोग,
गिरिजाजू पूजिबे को जानकी जू आई है ।
निरखे लखन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहनी भूडवाई है ॥
राखोजू थाजानकी लोचन मिलिबे को कोइ,
कहिबे के जोग न मैं रातें सी बनाई है ।
स्वामी सिया सखिन लखन तुलसी को तैसो
तमो मन भये जाकी जैसी ऐ समाई है ॥

इसके बाद सीता देवी से वर माँगती है—

मूरति कृपाल मजु माल दे बोलत भई,
पूजै मन भावना भावतो बरु बरि कै ।

रगभूमि का प्रसंग सन्नेप में परन्तु ठीक मानस जैसा ही है । भाषा आदि के प्रयोग से यह रचना मानस के बाद की सिद्ध होती है जैसे लक्ष्मण राजसभा में क्रोध करते हैं—

सुनहु भानुकुल कमलभानु जो अब अनुशासन पावो ।
को बापुरो पिनाक मेलि गुन मदर मेरु नवावो ॥

देखो निज किंकर को कौतुक ही कोंदड चढावो ।
लै धावो भजौ मृनाल ज्यो तौ प्रभु अनुज कहावो ॥

शील का प्रस्फुटन विशेषता से हुआ है—

मुनि पद रेनु रघुनाथ माये धरी हैं ।
रामरुख निरखि लखन की रजाय पाय,
धरावर धरनि सुसाधन करा हैं ।

विवाह-प्रसंग में तुलसी को राम से इतर भाइयो को देखने का समय मिला है जैसे—

जैमे ललित लषन लाल लोने ।
तैसे ललित उरमिला परस्पर लखन सुलोचन कोने ॥
सुषमासार सिंगारमारु करि कनक रच्यो हैं तेहि सोने ।
रूप प्रेम परिमिति न परत कहि बियकि रही मति मौने ॥
सोभा सोल सनेह सुहावन सभौ कैलशुद गोने ।
देखि नयन के नयन सकल भये तुलसीदास के होने ॥

अयोध्याकांड का वनगमन-प्रसंग तक का सारा वर्णन दस-बारह छंदों में है । मनोवैज्ञानिक स्थल छूट गये हैं । मथरा का काम भी नहीं है—

सुनत नगर आनन्द बवावन कंकेयी बिलखानी ।
तुलसीदास देव मायावस कठिन कुटिलता ठानी ॥

इसके बाद सारा प्रसंग चित्रपट के वाहर है और दूसरे ही छंद में तुलसी कौशल्या की चिता आरम्भ कर देते हैं । नवीनता है कि यहाँ कौशल्या राम से स्पष्टतः ही घर रहने के लिए अनुनय विनय करती

है । कोमलता की रक्षा गीतिकाव्य में होनी ही चाहिये थी—

रहि चलिये सुन्दर रघुनायक ।

जे सुत तात बचन पालनरत जननिउ तात मानवे लायक ॥

साराश कि सारा प्रसंग सन्नेप में है । वनपथ में नवीन प्रसंगों की योजना है जैसे—

फिरि फिरि राम सियातन ढेरत ।

तृषित जानि जल लेन लखन गये,

भुज उठाय ऊँचे ढरि ढेरत ॥

अयोध्याकांड की भरत की कथा यहाँ दशाश भी नहीं है । कवि सकेतो में ही कथा का आभास देता है और भरत के कारुण्य का चित्र और भी मर्मिक हो उठता है । इस सारी कथा को तुलसी ने शुक-सारी-सवाद के दो पदों में कह दिया है—

शुक से गहवर हिय कह सारो ।

वीर कीर सियराम लखन बिन लागत जग अंधियारो ॥

पापिनि चेरि अयानि रानि नृप हित अनहित न विचारो ।

कुल गुरु सचिव साधु सोचत विधि कौन बसाइ उजारो ॥

अवलोकने न चलत भरि लोचन नगर कुलाहल भारो ।

सुने न बचन करुनाकर के जय पुर परिवार सँभारो ॥

भैया भरत भखेत के सँग बन सब लोग सिधारो ।

हम पर पाइ पीजरन तरसत अधिक अभागि हमारो ॥

सुनि खग कहत अम्य मौनी रह समुक्ति प्रेम पथ न्यारो ।

गये ते प्रभु पहुँचाय फिरे पुनि करत करम गुन गारो ॥

जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो ।

तुलसी और प्रीति की चरचा कहत कहा करि पारो ॥

कहै शुक सुनहु सिखावन सारो ।

बिधि करतव विपरीग बामगति राम प्रेमपथ न्यारो ॥
को नरनारि अवध खग भुग जेहि जीवन राम ते प्यारो ।
विद्यमान सब के गवने बन बदन करक को कारो ॥
अम्भ अनुज प्रिय सखा नुमेवक देखि विषाद विसारो ।
पच्छी परवस परे पीजरन लेखे कौन हमारो ॥
रहि नृप की विगरी हे सब की अब एक सँवारनहारो ।
तुलसी प्रभु निज चरन पाठि भिस भरत प्रान रखवारो ॥

राम-भेट आदि की सारी कथा मन्त्रप मे है—

ता दिन सिंगवेरपुर आयो ।

राम सखा ते समाचार सुनि वारि विलोचन छायो ॥
कुस मायरी देखि रघुपति की हेतु अपनपा जानी ।
कहत कथा मियराम लखन की पठहि रैन विहानी ॥
भोरहि भरद्वाज आसम ह्वे करि निषादपति आग ।
चल्थो जनु तक्यो तडाग तृषित गज घोर घाम के लागे ॥
ब्रूमत चित्रकूट कहँ जेहि तहि मुनि बालक न बतायो ।
तुलसा मनहुँ फनिक्क मनि ढँढन निरखि हरखि उठि वायो ॥

बिलोके दूर ते दोउ वीर

भरत भयो ठाढो कर जोरि

काहे को मानत हानि हियै हौ ।

प्रीति नाति गुन सौल वरम कहँ तुम अवलम्ब हिये हौ ॥
तात जान जानिके नये दिन करि प्रयाण भित बानी ।
ऐहौ बेगि धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥

तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरन पीठ निज दीन्है ।
मनहु सबन के प्रान पाहरू भरत सीम धरि लीन्है ॥

चित्रकूट से लौटकर आने पर माताओं की विरह-दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। मानस में इसका अभाव है। मूर का प्रभाव स्पष्ट ही है क्योंकि कौशल्या यशोदा के शब्दों को ही दुहराती जान पड़ती है—

राघव एक बार फिर आवो ।

ये घर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिंघावो ॥
जो पय गयाय पोषि कर पकज बारबार चुनकारे ।
क्यो जीवहि मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे ॥
भरत सोगुना सार करत है अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहि-दिन होत भावरे मनहुँ कमल हिम मारे ॥
साहु पथिक जो मिले राम बन कहियो मान मँदेशो ।
तुलसा और मोहिं सब हित ते इनको बडो अँदेशो ॥

“पत्नी” की भी योजना है—

सुनी मै सखी मंगल चाह सुहाई ।

सुभ पत्रिका निषादराज की आज भरत पहुँ आई ॥
कुँवर सो कुशल छेम तेहि अवसर कुलगुरु कहें पहुँचाई ।
गुरु कृपाल सभ्रम दुर घर पर सादर सबहि सुनाई ॥
वधि विराधु सुर साधु सुखी करि ऋषि सिख आसिख पाई ।
कुम्भज शिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई ॥
रेवा-विन्ध सुपास मभ्यथल बसेहैं परनगृह छाई ।
पथ कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास मुनि गाई ॥

आरण्यकांड की सभी कथाएँ दे दी गई हैं कोई परिवर्तन नहीं है। केवल वे सक्षेप में रसात्मकता के साथ हैं। किष्किंधाकांड में केवल दो छंद हैं। एक में राम सीता के आभूषण देखते हैं और जामवत उन्हें प्रबोध करता है। दूसरी में राम स्वयं सुग्रीव को बुलाते हैं—

प्रभु कपिनायक को बोलि कह्यो है ।

वर्षा गई सरद ऋतु आई अब लौं नहिं मिय सिधु लख्यो है ॥
जा कारन तजि लोक लाज तन राखि वियोग सह्यो है ।
ताकौ तौ कपिराज आजु लागि कछु न काज निबह्यो है ॥
मुनि सुग्रीव समीत नमित मुख उत्तर देन चह्यो है ।
आह गये हरि जूयि देखि उर प्री प्रमोद रह्यो है ॥
पठये वदि वदि अवधि दसहु दिमि चले बल सवन गह्यो है ।
तुलसी मिय लागि भवदवि मानो फिरि हरि चहत भह्यो है ॥

सुग्रीव बाली की अवातर कथा गीतो की एकता नष्ट करती है, इससे नहीं दी गई है। सुन्दरकांड की मुख्य कथा सक्षेप में रखी है परन्तु सीता के वियोग-वर्णन और हनुमान् के राम को संदेश देने में कई छन्द लिखे गये हैं। कई नई कथाओं की सृष्टि की गई है जैसे विभीषण रावण से लाञ्छित होता है तो मा के पास जाता है।

जाय माय पाय परि कथा सो सुनाई है ।

समाधान करत विभाषण को बारवार,

काह भयो तात लात मारे बडो भाई है ।

विभीषण भाई कुबेर से मिलते हैं वहाँ सुमेरु पर शिव जी से भेंट होती है जो रामाश्रम में द्विधारहित हो जाने का उपदेश देते हैं। तब विभीषण राम के पास आते हैं। विभीषण-राम की भेंट में तुलसी ने

अनेक प्रकार से नवीनता लाने की चेष्टा की है और विस्तार भी दिया है। विभीषण के सचिव विभीषण की ओर से बिनती करते हैं। राम जामवत, सुग्रीव, नल, नील, अगदादि को बुलाते हैं। हनुमान् से कहते हैं कि मुझे विभीषण साधु लगता है क्या मैं शरण दूँ? लक्ष्मण से भी मलाह लेते हैं—मव को राजी पाकर लक्ष्मण हनुमान् को मादर लेने भेजते हैं। अशोकवाटिका में सीता-त्रिजटा-सलाप को भी कवि नहीं भूला है। वास्तव में हृदय की प्रत्येक मार्मिक अवस्था का चित्रण करने में कवि सजग रहा है। हाँ, परुष भावों का चित्रण कम है।

लकाकाड की कथा इमी से थोड़े से है। गीतो में वीररस का उद्रेक होना भी असम्भव था। इमी से युद्ध का एक गीत भी नहीं है। परन्तु लकाकाड के अतर्गत मार्मिक पसगो का खूब चित्रण है। जैसे लक्ष्मण के शक्तिघात पर राम का शोक, हनुमान् का भरत के बाण से गिर कर शोक करना और लक्ष्मण की मूर्छा की खबर पाकर भरत, शत्रुघ्न और माताओं का उद्वेग। वाद को माताओं के कारुण्य के सुन्दर चित्र मिलेंगे—

१ आला, अब रामलखन कित हँ है ।

चित्रकूट तजौ तब ते न लही सुधि बधु समेत कुसल सुत द्वै है ॥
वारि बयारि विषम हिम आतप सरि विनु बसन भूमि तल स्वै है ।
कन्दमूल फल फूल असन बन भोजन समय मिलत कत हँ है ॥

२ बैठी सगुन मनावति माता ।

कब ऐहँ मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि वाता ॥
दूध भात की दोनी दहौ सोने चोच मढैहौ ।
जब सिय सहित विलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौ ॥

अवधि समीप जानि जन्नी जिय अति आतुर अकुलानी ।
जनक बोलाइ पाँय परि पूछत प्रेम मगन भृदु बानी ॥

३ छेमकरी बलि बोलि सुवानी ।

कुसल छेम सिय राम लखन कव, ऐहँ अवधि अवध रजधानी ॥
सखि मुख कुकुम बरनि मुलोचनि मोचनि सोचनि वेद बखानी ।
देवि दया करि देहि दरम फल जोरि पानि बिनबहि सब रानी ॥

उत्तरकांड की कथा एकांततः नवीन है। तुलसी की मौलिक रचना है। उसमें राजा राम के आहार-विहार का सुन्दर वर्णन है जो कृष्ण-काव्य से होड़ करता है जैसे—

१. भोरे जानकीजावन जागे ।

सूत मागध प्रवीन बेनु वीना युनि द्वार गायक सरस राग पागे ॥

२ देखि सखी आज रघुनाथ सो ना बनी ।

×

×

×

सरजू मज्जन किहे सग सज्जन लिहे,
हेतु जन पर हिये कृपा कोमल कनी ।

सजनि आवत भवन मत्त गजवर गवन,
लक मृगपति ठबनि कुँवर कोसलधनी ॥

३ कृष्ण-छवि के ढग पर राम-छवि के वर्णन के अनेक छंद है ।

४. हिंडोल में रामसीता का परस्पर विहार भी सूर की कल्पना से प्रभावित है—

आली री राघो जी के रचिर हिडोलना भूलन जैये ।

यह तुलसी की मर्यादा भावना के विपरीत पड़ता है । बाद के राम-साहित्य-विकास में कृष्णकाव्य से प्रभावित तुलसी के इन स्थलों ने विष का काम किया है ।

५ वसन्त विहार जो विद्यापति और सूर के कृष्णकाव्य के ढग का ही है जैसे—

खेलत बसत राजाधिराज । नभ कौतुक देखत सुर समाज ॥
 सोहे सखा अनुज रघुनाथ साथ । मोरिन अन्नार पिचकारि हाथ ॥
 बाजै मृदग डफताल बेनु । छिरकै सुगन्ध भरै मलय रेनु ॥
 उत युवति यूथ जानका सग । पहिरे पट भूपन सरस रग ॥
 लिये छर्डा बेत सोधै विभाग । नाचरि गुमक गावे सरस राग ॥

परन्तु अतः में तुलसी फिर रामकथा को उठाते हैं और सीता के द्वितीय वनवास का लोभ सवरण नहीं कर पाते । इससे उन्हें कुछ करुण परिस्थितियों का चित्रण अवश्य मिल गया परन्तु उन्होंने सीता को वही छोड़ दिया, उत्तर-रामचरित के भवभूति की तरह करुणा के कमण्डल से दो छीटे भी नहीं दिये—

दुखी सिय पतिविरह तुलसी सुखी सुत सुख चाह ।
 आँच पथ उफनात सींचत सलिल ज्यो सकुचाइ ॥

इसी तरह उन्होंने दुखी कैकेयी पर आवश्यकता से अधिक निष्ठुरता बरती है—

कैकेयी जौ लौ जियत रही ।

तौ लौ बात मात सो मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥

मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गहनि गही ।

सीय लखन रिपुदमन राम रुख लखि सब की निबही ॥

इससे राम के शील की चाहे कितनी ही प्रतिष्ठा हो जाय परन्तु सद्गुण भक्त भरत का गौरव घटता है ।

अंतिम पद से विनयपत्रिका के लेखन का आभास मिलता है—

तुलसीदास जिय जानि सुअवसर,

भक्तिदान तव माँगि लियो ।

तुलसी की मौलिकता

तुलसी की मौलिकता पर विचार करने से पहले हमें उन ग्रन्थों से उनकी तुलना करनी होगी जिनका आभार तुलसी ने स्वीकार किया है या जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से तुलसी को प्रभावित कर सके हैं। ये ग्रन्थ हैं भागवत, वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण, प्रसन्नरावण, हनुमन्नाटक और भगवद्गीता।

१ भागवत और रामचरितमानस—मध्ययुग के वैष्णव धर्म के आन्दोलनों में श्रीमद्भागवत का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। शंकराचार्य, रामानुज, माध्व और निम्बार्क सभी वैष्णव आचार्यों का इस ग्रन्थ से परिचय था, इसका प्रमाण हमारे पास है। इनमें से कुछ ने भागवत पर टीकाएँ लिखी हैं और उसे प्रमाण ग्रन्थों में स्थान लिया है। स्पष्ट है कि मध्ययुग में श्रीमद्भागवत की मान्यता इतनी अधिक थी कि कोई भी आचार्य उसे छोड़कर अपने मत का प्रतिपादन नहीं कर सकता था। इसीलिए प्रत्येक आचार्य को इसकी सम्यक् सैद्धांतिक व्याख्या करनी पड़ी। मध्य युग के समस्त कृष्णभक्त संप्रदायों में भागवत के पठन-पाठन और कथा का प्रबन्ध था। वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय में भागवत की कितनी मान्यता थी। यह इसी बात से प्रगट है कि इस सम्प्रदाय के सबसे बड़े कवि सूरदास को अपनी मौलिक रचना को भागवत के ढाँचे पर उपस्थित करना पड़ा।

भागवत की इसी मान्यता के कारण रामभक्त तुलसी को भी उसका सहारा लेना पड़ा। यही नहीं, सूक्ष्म अध्ययन से यह पता चलता है कि रामचरितमानस की रचना के समय श्रीमद्भागवत बराबर तुलसी के सामने रही है। तुलसी ने यह चेष्टा की है कि वे भागवत के कृष्ण के समान ही राम की स्थापना करे। वे ऐमा करने में सफल भी हुये हैं। यह प्रसिद्ध है कि तुलसी काशी के वल्लभ सम्प्रदाय के मंदिर में कुछ दिन रहे थे और कदाचित् वहाँ रहते हुए ही उन्होंने कृष्णगीतावली की रचना की। इन सब बातों से स्पष्ट है कि तुलसी के लिये भागवत एक महत्त्वपूर्ण आधार ग्रन्थ रहा है यद्यपि उसका प्रभाव अधिकांश अपरोक्ष रूप में ही डूँढा जा सकता है। आगे हम इसी प्रभाव को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

पहले हम श्रीरामचरितमानस के ढाँचे की बात लेते हैं—

(१) भागवत में ग्रन्थ के आरम्भ में कल्पवृक्ष का रूपक है। तुलसीदास ने अनेक स्थान पर रामकथा को कल्पतरु कहा है। उन्होंने भी मानस के आरम्भ में रामचरितमानस के रूप में एक सुन्दर रूपक की प्रतिष्ठा की है।

(२) भागवत की भौति रामचरितमानस भी सम्वाद-काव्य है।

(३) भागवत महाकाव्य नहीं है। रामचरितमानस भी महाकाव्य नहीं है। काव्याचार्यों ने महाकाव्यों की एक विशिष्ट परिभाषा दी है। उसके अनुसार महाकाव्य की कथा को सर्गों में बँटा होना चाहिये। महाकाव्यों और पुराणों में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यही है कि पुराणों में कथा सम्वाद रूप में अविभाजित चलती है और प्रसंगोत्तर कथाओं और अतर्कथाओं को भी स्थान मिलता है जिनका महाकाव्य में कोई स्थान नहीं है। रामचरितमानस में कथा

का एक अखण्ड स्रोत बहता है और यद्यपि वह कांडो में विभाजित है तथापि यह विभाजन बहुत दूर तक कृत्रिम है और संस्कृत रामायणों की परम्परा की रक्षा के लिये ही किया जान पड़ता है। तुलसी के मानस में भागवत् की भाँति अतर्कथायें नहीं हैं परन्तु अनेक अतर्कथाओं का निर्देश अवश्य है जिससे स्पष्ट है कि तुलसी ने कथासौष्ठव की रक्षा के लिये उन्हें अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है यद्यपि उन्होंने अपनी कथा का पुराणों के ढग पर ही सोचा है।

पुराणों में वर्षा और शरद को ही स्थान मिला है, अन्य ऋतुओं के दर्शन नहीं होते। यह एक ऐसी परम्परा है जिसका कारण अज्ञात है। महाकाव्यों में समस्त ऋतुओं, दिवसरात्रि, संध्या, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, सागर आदि के सविस्तार वर्णन अपेक्षित हैं, रामचरितमानस में महाकाव्यों की प्रकृतिविषयक इन मान्यताओं का अनुसरण नहीं किया गया है। जहाँ प्रकृति के वर्णन भी हैं वहाँ वे सविस्तृत नहीं हैं और इन पर नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का आरोप किया गया है। वास्तव में प्रकृति वर्णन के नाम पर मानस में यदि कुछ है तो पुराण-परिपाटी का वर्षा और शरद ऋतु वर्णन ही है।

(४) वाल्मीकि रामायण में रावण के जन्म, तपस्या, वरदान प्राप्ति और ऋषि मुनियों पर उसके अत्याचार की कथा लकाकांड में रावण-वध के बाद दी है। रामचरितमानस में यह सारी कथा रामजन्म की भूमिका के रूप में उपस्थित की गई है। इससे कथा विकास में कलात्मकता का समावेश हो जाता है। पाठक जानना चाहता है कि राम-रावण युद्ध का क्या कारण है और उसकी जिज्ञासा को रावण-वध तक अटकाये रखना कला की दृष्टि से एक

दोष है। सम्भव है तुलसीदास ने भागवत की कसवध कथा से रामकथा को इस रूप में उपस्थित करने का सूत्र ग्रहण किया हो।

(५) भागवत में कृष्ण कथा की समाप्ति पर वेदव्यास ने एकादश स्कंध के अंतगत आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों पर गीताओं के रूप में सम्वाद उपस्थित किये हैं। रामचरितमानस के उत्तरकांड में रामकथा केवल कुछ पृष्ठों पर समाप्त हो जाती है और शेष पृष्ठों में भागवत के एकादश स्कंध की भाँति ही आध्यात्मिक विवेचन चलता है। भागवत में कृष्ण ने उद्धव से गीता कही है, रामचरितमानस के उत्तरकांड में भी इस प्रकार की एक गीता है जो राम ने पुरवासियों के प्रति कही है, रामचरितमानस के उत्तरकांड में कागमुशुण्डि और गरुडसवाद का वही स्थान है जो भागवत में एकादश स्कंध का है।

(६) भागवत के द्वादश स्कंध में भागवत के विषयों की सूचनिका उपस्थित की गई है। लगभग सभी पुराणों के अंत में इसी प्रकार की विशेष सूची मिलती है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में तुलसीदास ने भी कागमुशुण्डि के मुख से इसी प्रकार की सूची कहलाई है। (उत्तर० ६४-६८)

(७) भागवत की तरह तुलसीदास की रामकथा भी माहात्म्य के साथ समाप्त होती है।

ऊपर हमने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस का संगठन एक प्रकार का है और तुलसीदास इस विषय में अवश्य ही श्रीमद्भागवत के ऋणी है परन्तु अनेक प्रसंगों की तुलना करने पर यह निश्चय हो जाता है कि तुलसीदास

की दृष्टि भागवत के दशम स्कंध पर ही अधिक रही है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की कथा है। नीचे हम उन प्रसंगों की तुलना करेंगे जिन पर भागवत का ऋण है—

(१) भागवत स्कंध १० अध्याय १ छंद १५-२६ में पृथ्वी के ब्रह्मा के पास जाने, ब्रह्मा आदि देवताओं की स्तुति और ब्रह्म का आकाशवाणी का वर्णन है। रामचरितमानस में यह प्रसंग इस प्रकार है—

अतिसय देख वम की हानी । परम समीत वरा अकुलानी ॥

×

×

×

वेनु रूप धरि हृदय विचारी । गई तहाँ जहँ सुर मुनि भारा ॥
निज सताप सुनाएँसि रोई । काहे ते कछु काज न होई ॥

छंद—सुर मुनि गवर्वा मिलकर सर्वा में विरचि के लोका ।
सत गोतनधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका ॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोरउ कछु न बसाई ।
जाकर तै दासी सो अविनासी हमरउ तोर सहाई ॥

सोरठा—धरनि धरहि मन धीर कह विरचि हरिपद सुभिर ।
जानत जन कर पीर प्रभु भजिहि दारुन विपति ॥ १८४ ॥

विरचि मन हरषि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर ॥

गगन ब्रह्म बानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुझाना ॥

तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा । अगम भई भरोस जिय आवा ॥

निज लोफहि विरचि मे देवन्ह इहइ सिखाइ ।

बानर तनु बरि धरि महि हरिपद मेवहु जाइ ॥

(२) भागवत और रामचरितमानस में भगवान् के प्राकट्य के प्रसंग लगभग मिलते-जुलते हैं। “जिस समय भगवान् के आविर्भाव का अवसर आया, स्वर्ग में देवताओं की नौबत अपने आप बज उठी। किन्नर और गधर्व मधुर स्वर से गाने लगे और सिद्ध और चारण भगवान् के मंगलमय गुणों का वखान करने लगे। विद्याधरियों अप्सराओं के साथ नाचने लगीं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्द से भर कर पुष्पों की वर्षा करने लगे—जल से भरे हुए बादल धीरे-धीरे समुद्र के पास जाकर गजना करने लगे।” (भाग० स्कंध १० अ० ३ छंद २-८)

गगन विमल सकुल सुर जूया । गावहि गुन गववे वरूया ॥

वरषहि समन मुअजुलि साजा । गहगाहि गगन दुँदुभी बाजी ॥

अस्तुति कराह नाग मुनि देवा । बहु बिधि लखहि निज-निज मेवा ॥

(बालकांड १९१)

दोनों ग्रन्थों में बालक भगवान् का रूप भी एक प्रकार का है। भागवत में लिखा है—“उसके नेत्र कमल के समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथों में शंख, चक्र, गदा, और कमल लिये हैं। वत्सस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है वर्षा कालीन मेघ के समान परम सुन्दर स्यामल सरीर।”

“लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी ।
भूषण बनमाला नयन विसाला सोभा सिंधु खरारी ॥”

भागवत में देवकी जिस प्रकार बालक कृष्ण की प्रार्थना करती है उसी प्रकार मानस में कौशल्या बालक राम की प्रार्थना करती है । भागवत में देवकी भगवान् के ऐश्वर्य का वर्णन करती हुई कहती है—वही परम-पुरुष परमात्मा अब मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या ? मानस में कौशल्या भी इसी प्रकार चिता करती है—

मम उर सो बासी यह उपहासा सुनत धीर मति थिर न रहै ।

भागवत में देवकी विनती करती है—“आप शख, चक्र, गदा और कमल की शोभा से युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लीजिए, सामान्य बालक का रूप धारण कर लीजिए ।” भगवान् भी तुरन्त एक साधारण शिशु का रूप धारण कर लेते हैं । मानस में भी इसी प्रकार है—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।

कीजै सिखु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ॥

भागवत में बालक कृष्ण देवकी को उसके पूर्व जन्म और वरदान-प्राप्ति की कथा सुनाते हैं । मानस में तुलसी इस प्रकार की कथा का संकेत ही करके रह जाते हैं—

कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जोइ प्रकार सुत प्रेम लहै ।

(३) भागवत के कृष्ण जन्मोत्सव (अध्याय ५० छंद १-१६) के वर्णन को सूरदास ने सूरसागर में उसी प्रकार सविस्तृत लिखा है और कदाचित् तुलसीदास भागवत और सूरसागर दोनों के वर्णनों से प्रभावित हैं यद्यपि उनका वर्णन सक्षेप में है (बालकांड १९४)

(४) भागवत में नामकरण के अवसर पर महर्षि गर्ग कहते हैं—“तुम्हारे पुत्र के और भी कई नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। मैं तो उन नामों को जानता हूँ परन्तु ससार के साधारण लोग नहीं जानते हैं।” मानस में वसिष्ठ भी इसी प्रकार कहते हैं—

इन्हके नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहव स्वमति अनूपा ।

(बालकांड १९६)

(५) भागवत में बालकृष्ण के चमत्कारों का सुन्दर वर्णन है। उन्हीं के ढग के कुछ चमत्कारों की सृष्टि तुलसीदास ने की है—

एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना । प्रजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चगवा । आपु गर्द जहँ पाक पनावा ।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करन देख मुन जाई ॥
ग जननी भिमु परिह भयमाता । देखा गाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा मुन मोई । हृदय कप सन वार न होई ॥
इत्रा उहाँ दुःख बानक देखा । सति भ्रम मोर कि आन विमंखा ॥
देखि राम जनना अकुतानी । प्रभु हेमि शिन्ह मवुर मुस्कानी ॥

भागवत में माटी-प्रसंग में बालकृष्ण जिस प्रकार माता को विराट

रूप दिखलाते हैं, उसी प्रकार भगवान् राम कौशल्या को अपना विराट् रूप दिखाते हैं—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखण्ड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥

(पालकांड २०१)

(६) भागवत स्कंध १० अ० ४५ में श्रीकृष्ण के अध्यात्म के प्रसंग में लिखा है—“परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओं के प्रवर्तक हैं। इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरु जी के केवल कहने मात्र से सारी विद्याएँ सीख लीं।” रामचरितमानस में भी इसी प्रकार का कथन है—

गुरु-गृह गये पढ़न रघुराई । अल्पकाल विद्या सब आई ।

जामी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।

(७) भागवत के श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवेश और रामचरितमानस के राम-लक्ष्मण के जनकपुर-प्रवेश में इतना अधिक साम्य है कि कोई भी पाठक इस बात से इकार नहीं कर सकता कि तुलसी के सामने भागवत का यह प्रसंग था ।

(८) भागवत के रंगभूमि-प्रवेश के दर्शकों के विभ्रम को तुलसी ने अपने मानस में उसी तरह रख दिया है—“जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय बड़े-बड़े पहलवान यह समझकर कि उनका शरीर वज्र-सा कठोर है, रौद्र-रस का अनुभव करने लगे। साधारण मनुष्यों ने ऐसा समझा कि

(३) भागवत के कृष्ण जन्मोत्सव (अध्याय ५० छंद १-१६) के वर्णन को सूरदास ने सूरसागर में उसी प्रकार सविस्तृत लिखा है और कदाचित् तुलसीदास भागवत और सूरसागर दोनों के वर्णनो से प्रभावित है यद्यपि उनका वर्णन सक्षेप में है (बालकांड १९४)

(४) भागवत में नामकरण के अवसर पर महर्षि गर्ग कहते हैं—“तुम्हारे पुत्र के और भी कई नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं । मैं तो उन नामों को जानता हूँ परन्तु ससार के माधारण लोग नहीं जानते हैं ।” मानस में वसिष्ठ भी इसी प्रकार कहते हैं—

इन्हके नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहव स्वमति अनुरूपा ।

(बालकांड १९६)

(५) भागवत में बालकृष्ण के चमत्कारों का सुन्दर वर्णन है । उन्हीं के ढग के कुछ चमत्कारों की सृष्टि तुलसीदास ने की है—

एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥
करि पूजा नेवय चढावा । आपु गढे जहँ पाक बनावा ।
बहुरि मातु तहँवाँ चलि आई । भोजन करन देख सुत जाई ॥
ग जननी भिसु पति भयमाता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत मोई । लट्ठे रूप मन बार न होई ॥
ढहा उहाँ दुइ बानर देखा । मति भ्रम मोर कि आन विगेखा ॥
देखि राम जनना अकुनानी । प्रभु होय दान्ह सधुर मुखांनी ॥

भागवत में माटी प्रसंग में बालकृष्ण जिस प्रकार माता को विराट

रूप दिखलाते हैं, उसी प्रकार भगवान् राम कौशल्या को अपना विराट् रूप दिखाते हैं—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखण्ड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥

(पालकांड २०१)

(६) भागवत स्कंध १० अ० ४५ में श्रीकृष्ण के अध्यात्म के प्रसंग में लिखा है—“परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओं के प्रवर्तक हैं। इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरु जी के केवल कहने मात्र से सारी विद्याएँ सीख ली।” रामचरितमानस में भी इसी प्रकार का कथन है—

गुरु-गृह गये पढ़न रहुराई । अल्पकाल विद्या सब आई ।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।

(७) भागवत के श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवेश और रामचरितमानस के राम-लक्ष्मण के जनकपुर-प्रवेश में इतना अधिक साम्य है कि कोई भी पाठक इस बात से इकार नहीं कर सकता कि तुलसी के सामने भागवत का यह प्रसंग था ।

(८) भागवत के रंगभूमि-प्रवेश के दर्शकों के विभ्रम को तुलसी ने अपने मानस में उगी तरह रख दिया है—“जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय बड़े-बड़े पहलवान यह समझकर कि उनका रणरंग बज्र-सा कठोर है, रौद्र-रस का अनुभव करने लगे। साधारण मनुष्यों ने ऐसा समझा कि

ये कोई श्रेष्ठ पुरुष है और इसी अवस्था में उनकी विचित्रताओं का स्मरण करके अद्भुत रस की अनुभूति की। स्त्रियों को ऐसा जान पड़ा मानो ये मूर्तिमान कामदेव हैं। वे शृंगार-रस की अनुभूति में तन्मय हो गईं। ग्वालबाल उन्हें अपना स्वजन समझकर हँसने लगे और हास्यरस का आस्वादन करने लगे। पृथ्वी के दुष्ट शासकों ने यह समझकर कि हमारे शासन करनेवाले—हमें दंड देनेवाले हैं, उनमें वीररस का अनुभव किया और माता-पिता के समान बड़े-बूढ़ों ने उन्हें नन्हें-नन्हें बच्चों के रूप में आखाड़े में आते देख कर एणरस की अनुभूति प्राप्त की। कस ने समझा कि यह तो हमारा काल ही है और इस प्रकार वह भयानक रस की अनुभूति में डूब गया। अज्ञानियों ने उनके शरीर पर हाथी का खून, मद आदि लगा देख कर विकृत रूप की कल्पना की, इसीलिए उन्हें वीभत्सरस का अनुभव हुआ। योगियों ने उन्हें परमात्मतत्त्व समझ कर शांतिरस का साक्षात्कार किया। भगवान् के भक्त और वृष्णिवशी उन्हें अपना ईष्टदेव समझ कर प्रेम और भक्ति के रस में डूब गए।

रामचरितमानस में राम-लक्ष्मण के स्वयंवर में पहुँचने पर भी इसी प्रकार का वर्णन है—

जिन्हके रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन्ह तेसी ॥
 देखहि रूप महा रनवीरा । मनहुँ वाररस धरे सरीरा ॥
 डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारा । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
 रहे असुर छल छोनिष वेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ।
 पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन मुखशई ॥

नारि बिलोकाह हरषि हियँ, निज निज रुचि अनुरूप ।
 जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप ।

विदुषन्ध प्रभु विराट्मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैमे । सजन मगे प्रिय लागहिं जैमे ।
सहित विदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जानि बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सात मुद्र सम सहज प्रकासा ॥
हरि भगवन्ध देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव डव सब मुखदाना ॥

(बालकांड २४२)

(९) तुलसीदास ने किष्किंधाकांड के अंतर्गत वर्षा और शरद वर्णन को भागवत के आधार पर ही लिखा है । कहीं-कहीं तो उन्होंने भागवत की सामग्री उम्मी प्रकार, बदले बिना ग्रहण कर ली है । वीसवे अध्याय की लगभग समस्त सामग्री का उपभोग तुलसी ने अपने ढंग पर कर लिया है । (तुलना कीजिए भाग अ० २० छंद ३-३४ और कि० ४२२-४२४) एवं भा० अ० वही छंद ३२-४५ और कि० ४२४-४२५) अतएव केवल इतना है कि तुलसी ने भागवत की दार्शनिक उपमाएँ नहीं ली हैं और प्रसंग को एकदम ज़ानसहित नहीं कर दिया । उनकी दृष्टि नैतिक तत्त्वों पर अधिक है । तुलसी ने भागवत के प्रकृतिवर्णन ढंग को इसलिए ग्रहण किया है कि यह ढंग उनके लिए अत्यन्त उपयोगी था और तुलसी की नैतिकता और मर्यादा की भावना भी इससे पुष्टि पा जाती थी । इस ढंग को तुलसी ने अन्य स्थानों पर भी यत्किंचित् ग्रहण किया है ।

(१०) भागवत में गोपियों की कृष्णवियोग की प्रतापपूर्ण उक्तियाँ ही रामचरितमानस के उस प्रसंग में प्रतिध्वनित होती हैं जहाँ सीताहरण के बाद राम विरहाकुल होकर लतातरुओं से इस प्रकार पूछते हैं—

लङ्घिमन समुभाए बहु भौंती । पूछत चले लता तरु पौंती ॥
 हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
 खजन सुरु कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
 कुन्दकली दाडिम दामिनी । कमल सरद समि अहि मामिनी ॥
 उरुन पास मनोज वनु हसा । गज केहरि निज सुनत प्रमया ॥
 श्रीफल कनक कदलि हरपाही । नेकु न सक सकुच मन राही ॥
 सुनु जानकी तेहि त्रिनु आजू । हरपे सकल पाप जनु राजू ॥
 किमि सहि जान अनख तोहि पाहा । प्रिया बेगि प्रगटमि कस नाही ॥
 एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहु महा गिरही अति कामी ॥

(आरण्यकांड २९ ग्व)

तुलना से यह पता चल जायगा कि तुलसीदास भागवत के गोपीविरह से परिचित थे। यह तुलसीदास की मौलिकता है कि उन्होंने मूल भावना भागवत् से लेकर उस पर रीतिशास्त्र का रंग चढ़ा कर एक नई सृष्टि की है। उन्होंने नारी-अंगों के उद्गमों को एक स्थान पर रख दिया है और इस प्रकार श्रीजानकी जी के सौंदर्य का उद्घाटन लिया है।

(११) भागवत स्कंध १२, अध्याय २ में व्यास जी ने कलियुग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मानस उत्तरकांड में भी इसी प्रकार कलियुग का वर्णन है।

ऊपर भगवान के अनेक ऐसे उद्धरण उपस्थित किये हैं जो सब हमारे प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य प्रसंगों और स्थलों पर भी भागवत का प्रभाव लक्षित है। भागवत स्कंध १२ अध्याय ३ में नाम सकीर्तन का माहात्म्य है। रामचरितमानस की कथा के आरम्भ में तुलसी राम नाम के माहात्म्य

का सविस्तार वर्णन करते हैं (बालकांड १९—२७) जैसा हम अन्यत्र कह चुके हैं उत्तरकांड का ढाँचा भागवत के ग्यारहवें स्कंध पर खड़ा किया गया है परन्तु उसमें दार्शनिक विवेचन की अपेक्षा ज्ञान के ऊपर भक्ति की महत्ता ही अधिक स्थापित की गई है। रामचरित-मानस में सत-असत, ज्ञान और भक्ति के द्वन्द्व और वर्णाश्रम धर्म को विस्तार मिला है। भागवत के ग्यारह-बारह स्कंध में यही सब विषय आते हैं परन्तु वहाँ उनका वर्णन विशद नहीं है।

भागवत और रामचरितमानस के दार्शनिक और आध्यात्मिक भावों में भी साम्य है। यद्यपि आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर अनेक धार्मिकवादों का आरोप किया है, हम यह जानते हैं कि उससे मूल में अद्वैत का ही समर्थन होता है। वास्तव में भागवत और रामचरितमानस का आध्यात्मिक संदेश एक ही है। इसे हम अद्वैत भक्ति कह सकते हैं। रामचरितमानस में अद्वैतवाद का ही समर्थन मिलता है परन्तु यह अद्वैतवाद शंकर के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से भिन्न है। यह भिन्नता इस कारण है कि तुलसी की दार्शनिक भूमि उनकी अध्यात्म भूमि से प्रभावित है। वे तत्त्ववादी नहीं। एक ही पक्ष में वे निगुण ब्रह्मवादी भी हो जाते हैं और साथ ही सगुण ब्रह्मवादी भी बने रहते हैं। वे उत्तरकांड में कहते हैं—

जे सगुण निर्गुण रूप राम अनूप भूप शिरोमणे ।

×

×

×

जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावही ।

ते कहहुँ जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावही ॥

इसी दृष्टिकोण के आधार पर तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण में तादात्म्य स्थापित किया है और कहा है—

अगुर्नाह सगुर्नाह नहि कछु भेदा । गावत मुनि पुरान बिधि वेदा ॥

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल विलग नहि जैये ॥

भागवत का दृष्टिकोण भी यही है—

इत्थ सता ब्रह्म सुखानुमूला

दारथ गताना परदवतेन ।

रा. त्रे ॥ नरदारकेण

मार्द्ध विजहु कृतपुण्य पुत्रा ॥

(ज्ञानियों की रागद्वेष विमुक्त विशुद्ध मनोवृत्ति में जो अखंड सच्चिदानन्द रूप से प्रकाशित होते हैं, दाम्यभक्ति-परायण भक्त साधकों के लिए जो साक्षात् करुणानिधान परदैवत के रूप में प्रकट होते हैं, और मायाश्रित व्यक्तियों के सामने जो मनुष्य-बालक के रूप में 'प्रतीत होते हैं', उन्हीं साक्षात् भगवान् के साथ कृतपुण्य पुत्र ब्रजगोप बालक इस प्रकार विचित्र योजनारूप लीला-विहार कर रहे हैं)

अस्यामि देव वपुषो मदनुग्रहस्य

स्वेच्छामयस्य न तु भूत मयस्य कोऽपि ।

नेशे महि त्ववसितु मनसान्तरेण

साक्षात्तनैव किमुतात्म सुखानुभूते ॥

(हे भगवन् ! यह जो आपका नील जलद-कान्ति शरीर है,

यह भौतिक या मात्रिक नहीं है। यह आपके भक्तों के इच्छानुसार ही अभिव्यक्त होता है। इस वपु की कितनी महिमा है जो मैं जगत् रचयिता स्वयं ब्रह्मा भी समाहित चित्र के द्वारा समझने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ, फिर सुख, चैतन्य और आत्मभूत तुम्हारे साक्षात् स्वरूप की महिमा मैं कैसे ससक्त सकूँगा अर्थात् वह बोधगम्य नहीं है, साक्षात् बोध-स्वरूप है। श्रीमद्भागवत भगवद्गीता और रामचरितमानस तीनों ग्रन्थों में निर्गुण की अपेक्षा मगुण को ही सहजसाध्य माना गया है। भगवद्गीता में स्पष्ट लिखा है कि अव्यक्त, निर्विशेष ब्रह्म में आसक्ति कठिन है और उस आसक्ति का बनाये रखना और भी कठिन है, इसीलिए इन तीनों ग्रन्थों में भक्तियोग की ही अधिक महत्ता है। तुलसीदास ने इसीलिए ज्ञान के पथ को कृपाण की धार कहकर भक्ति के सहज मार्ग की ही प्रतिष्ठा की है। वास्तव में उपरोक्त तीनों ग्रन्थों का बीज आध्यात्म तत्त्व एक ही है जिसे गीताकार ने इन शब्दों में कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज (१८-६६)

तमेव शरणं गच्छे सर्वभावेन भारत (१८-६७)

रामचरितमानस में भगवान् रामचन्द्र भी इसी प्रकार कहते हैं—

जौ परलोक इहाँ सुख चहह । मुनि मम बचन हृदय दृढ गहह ॥

मुलम-सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गई ॥

भागवत के श्रीकृष्ण और मानस के श्रीरामचन्द्र में भी समानता है। भागवत के श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कोई भी इनकी कोटि तक नहीं पहुँचते। यही परब्रह्म कृष्ण अवतार धारण करते हैं। इन परब्रह्म कृष्ण का स्वाभाविक रूप निर्गुण है

परन्तु वे अपने सगुण रूप में गोलोक में निवास करते हैं। भक्तों के आनन्द के लिए यह गोलोकवासी कृष्ण वृन्दावन में अवतार लेते हैं। तुलसीदास ने अपने राम को भागवत के श्रीकृष्ण के समान ही प्रतिष्ठित किया है। उनके राम भी परब्रह्म हैं और सगुण रूप से माकेतवासी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनकी वदना करते हैं। निर्गुण ब्रह्म (राम) भक्तों की रक्षा और पृथ्वी के भारहरण के लिए दशरथ राम के रूप में अवतार लेते हैं। तुलसी ने कहीं-कहीं राम को महाविष्णु भी कहा है परन्तु इस ओर उनका आग्रह अधिक नहीं है। हो सकता है, ऐसा अध्यात्म रामायण के प्रभाव के कारण हुआ हो जिसमें राम विष्णु के ही अवतार हैं, परब्रह्म नहीं हैं।

अन्त में, भागवत और रामचरितमानस की तुलना करने पर हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि तुलसीदास ने भागवत का सहारा ही नहीं लिया है, उन्होंने अपने सामने भागवत का ही आदर्श रखा है। उन्होंने रामकथा को कृष्णकथा के ढाँचे पर खड़ा किया है और राम का वही रूप गढ़ा है जो रूप भागवत में कृष्ण का है। इस सामान्य साम्य के अतिरिक्त तुलसी ने भागवत के अनेक प्रसंगावधान और काव्योपयोगी स्थलों से सहारा लिया है और कहीं-कहीं तो उनका उल्था-मात्र कर दिया है। जहाँ-जहाँ तुलसी का मनावृत्ति भागवत का वणनशैली से मिल गई है, वहाँ-वहाँ तुलसी ने वह मनावृत्ति अपना ली है। उदाहरणार्थ हम वपा और शरदू के वणन उपस्थित कर सकते हैं। तुलसी नाति को महत्त्व देते थे। वे समाज और व्यक्ति के जीवन को मर्यादाभाव से पोषित देखता चाहते थे। भागवत के उपरोक्त वणनों ने उन्हें इसीलिए आकृष्ट किया कि उनकी शैली में वे प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ उच्च नैतिक तत्त्वों की स्थापना कर सकते थे। भागवत में भी सत-असत

और वर्णाश्रम संस्थापन जैसे विषयों पर लिखा गया है, परन्तु तुलसी के समय में इन विषयों पर अधिक विस्तार से और अधिकारपूर्ण ढंग से कहने की आवश्यकता थी। इसीलिये तुलसी ने इन प्रसंगों पर विशेष बल दिया। यह भी सम्भावना है कि तुलसीदास ने भागवत के उद्धव के चरित्र को अपने सामने रखकर ही भरत के चरित्र का निर्माण किया है। मत्स्य, नाममाहात्म्य आत्मा-परमात्मा और भक्तियोग के प्रकरणों में भी तुलसी थोड़े-बहुत भागवत के ऋणी है।

१—वाल्मीकि और रामचरितमानस—वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस दोनों रामकथा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। राम-कथा-सम्बन्धी सबसे पहला ग्रन्थ कदाचित् वाल्मीकि रामायण ही है। यद्यपि कुछ विद्वानों का कहना है कि 'दशरथ जातक' इससे पहले की चीज है या इसकी समकालीन रचना है। जो हो, वाल्मीकि रामायण रामकथा का आदि ग्रन्थ है और तुलसी ही क्या, सभी पुराण और रामायणों अपनी कथा के लिए इसी ग्रन्थ की ऋणी हैं।

उपरोक्त दोनों ग्रन्थों में सबसे महान् अन्तर दृष्टिकोण का है। वाल्मीकि चरित्रकाव्य लिख रहे हैं। पहल ही श्लोक में वाल्मीकि नारद स पूछते हैं—'इस समय ससार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रत, बहुत प्रकार के चरित्र करनेवाला, प्राणीमात्र का हित करनेवाला, विद्वान्, शक्तिमान्, अति दशनीय, आत्मज्ञानी, क्रोध जीतनेवाला, तेजस्वी, निन्दारहित, जिसके सग्राम में क्रोध उत्पन्न होने पर देवता भी भयभीत हो, ऐसा कौन है ? हे महर्षि ! यह जानने की मुझे उत्कट इच्छा है और आप ऐसे मनुष्यों के जानने में समर्थ भी हैं।' नारद जी उत्तर में अयोध्या के राजा

रामचन्द्र का नाम लेते हैं और उनके गुण बतलाते हैं। इन श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुष श्री रामचन्द्र में विष्णु के अवतार का भी आरोपण किया गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मा सहित देवता विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि वे रावण आदि राक्षसों के नाश के लिए मनुष्य रूप में अवतार ले और विष्णु राजा दशरथ को अपना पिता बनाना स्वीकार करते हैं। विद्वानों का कहना है कि राम ने विष्णुत्व का आरोप वैष्णव धर्म के प्रथम पुनुरुत्थान के समय हुआ और वे अरा प्रक्षिप्त हैं, जिनमें राम को विष्णु या विष्णु का अवतार कहा गया है। यदि हम इन अशो को प्रक्षिप्त स्वीकार न करें तो हम यह कह सकते हैं कि वाल्मीकि विष्णु के अवतार राम को श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुष के रूप में सामने रख रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास के रामचन्द्र इनसे भिन्न हैं उनका दृष्टिकोण इन पक्तियों से स्पष्ट है—

मगलकरनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ को ।

गहि कूर कविता सरित को ज्यो सरित पावन पाथ की ॥

प्रभु मुजस सगति भनिनि भलि होइहि मुजन मन भावनी ।

भव अग भूति मयान को सुभिरत मुहावनि पावनी ॥

तुलसीदास राम को श्रेष्ठ और आदर्शचरित्र के रूप में उपस्थित नहीं कर रहे हैं। उनके राम तो स्वयं भगवान् हैं जो मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर हैं। वे अपनी लीला-द्वारा सत्कार के सामने सांसारिक व्यवहारों में मर्यादा और श्रेष्ठतम गुणों की स्थापना भले ही करते हों, तुलसीदास की रामकथा रामभक्ति की स्थापना के लिए लिखी गई है। यही एक लक्ष्य तुलसी के आगे है। वे कहते हैं—

“रामकथा जग मंगल करनी ।”

‘रामभर्गति-भूषित जिय जानी । सुनिहहि सुजन सराहि सुबानी ॥”

“रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥”

तुलसी का सारा ग्रन्थ इसी रामभक्ति पूर्ण दृष्टिकोण से प्रभावित है। तुलसी के राम विष्णु के अवतार नहीं, परब्रह्म है। व ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ऊपर है (विधि हरि शम्भु नचावन हारे)। वे जहाँ भक्तों और साधुओं के परित्राण के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए अवतार लेते हैं या भक्तों के आनन्द के लिए अथवा भक्तों की बात पूरी करने के लिए।

वाल्मीकि की रामकथा पंचम सर्ग से आरम्भ होती है। अयोध्या के राजा दशरथ ने वैभव का वणन करने के बाद वाल्मीकि दशरथ की पुत्र-विषयक चिन्ता दिखलाते हैं। वाल्मीकि में राजा मंत्री को बुलाते हैं और सुमित्र द्वारा पुरोहितों और गुरुओं को बुलाते हैं। उन्हें पुत्र न होने का दुःख बतलाकर अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा प्रकट करते हैं। ऋषि लोग उनकी बात स्वीकार करते हैं, परन्तु इसी समय सुमित्र राजा से कहते हैं कि उन्होंने सनत्कुमार से सुना है कि शृगीऋषि उन्हें पुत्र देगे। सुमित्र के यह वचन सुनकर राजा ने गुरु वशिष्ठ को बुलाया उनकी सलाह ले मंत्री और रानियों को लेकर वे शृगी ऋषि के आश्रम में गये जो दूर अग देश में था। वहाँ अग देश के राजा और उनके मित्र रोमपाद भी बैठे थे। कुछ दिनों वहाँ रह कर दशरथ रोमपाद और शृगी ऋषि को लेकर अयोध्या लौट आये। शृगी ऋषि ने यज्ञ के लिये विशाल आयोजन कराया। राजा के समस्त सम्बन्धी और दूर देश के राजा इकट्ठे हुए। निश्चित तिथि को यज्ञ आरम्भ हुआ। इस समय यज्ञ के लिए छोड़ा हुआ घोड़ा लौट आया था। वाल्मीकि में यज्ञ के अवसर पर

दानादि का सविस्तार वर्णन है। रामवर्तिमानस मे यह प्रकरण इस प्रकार है—

एक बार भूपति मनमाही । भै गलानि मोरे सुत नाही ॥
 गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि विनय विसाला ॥
 निज दुख मुख सब गुरुहि मुनायउ । कहि वसिष्ठ बहु विधि समुभायउ ॥
 वरहु वार होइहहि सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भयहारी ॥
 नृगी ऋषिह वसिष्ठ बुलावा । पुत्र काम सुभ यज्ञ करावा ॥
 भगति सहित मुनि आहुति दान्हे । प्रगटे अग्नि चारुकर लीन्हे ॥
 गुरु वसिष्ठ जो हृदय त्रिचारा । सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
 यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जया जोग जेहि भाग बनाई ॥

तत्र अदृश्य भये पावक सकलसमहि समुभाय ।

परमानन्द मगन नृप, हरष न हृदय समाय ॥ १८६ ॥

वाल्मीकि अध्याय १२ मे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुह्न के जन्म दान, नामकर्ण, विद्याध्ययन, अस्त्र-शस्त्र विद्या, शिक्षाप्राप्ति, पौडशावस्था की प्राप्ति और गाधितनय विश्वामित्र के आगमन की कथा है। परन्तु तुलसी ने इन प्रसंगों में स्पष्टतः आध्यात्म रामायण और भागवत को अपना आधार माना है। आध्यात्म के आधार पर तुलसी राम के चतुर्भुज रूप में जन्म और माता की प्रार्थना से शिशु रूप ग्रहण की कथा लिखते हैं। भागवत के कृष्णजन्मोत्सव से अयोध्या की शोभा का वर्णन ग्रहण करते हैं। रामजन्मोत्सव का उत्साह भी वहीं से लिया गया है। राम के नामकरण, शिशुचरित, विराटरूप, बालभंग वगन बालचरित, महज ज्ञानप्राप्ति की कथाये भागवत के आधार पर ही खड़ी की गई है। वाल्मीकि में इनका अभाव है। यह अन्तर दृष्टिकोण के कारण है। वाल्मीकि चरित्र

काव्य लिख रहे हैं। शिशु और बालक राम उनके लिए अनुपयोगी है। वे तो लीला काव्य लिख रहे हैं—

व्यापक सकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।

भगत हेतु नाना विवि, करत चरित्र अनूप ॥ २०५ ॥

तुलसी ने उन सब प्रसंगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है जो भक्त की भक्तिभावना को दृढ़ करने में काम आ सकते हैं।

वाल्मीकि और तुलसी का विश्वामित्र प्रसंग लगभग एक-सा है, परन्तु तुलसी ने समस्त अप्रासंगिक प्रकरणों को हटा दिया है। दृष्टिकोण के अन्तर ने यहाँ भी अन्तर कर दिया है। वाल्मीकि में दशरथ राम के बालक होने और रावणादि राक्षसों की निर्दयता और उनके पराक्रम की दुहाई देते हैं। तुलसी में दशरथ की उक्तियों को अधिक मनोवैज्ञानिक बना दिया गया है—

चौथेपन पायउँ सुत चारों किमोरा २०८

वाल्मीकि में दशरथ की बात सुनकर ऋषि रुष्ट हो जाते हैं और चले जाना चाहते हैं (अ० २१) तुलसी में द्वर्षित होते हैं (हृदय हरप माना मुनि जानी २०८)। दोनों ग्रन्थों में वशिष्ठ को समझाना पड़ता है और अन्त में राजा राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देते हैं, परन्तु उहाँ वाल्मीकि में यह सब सविस्तार है, वहाँ तुलसी इतने संक्षेप से काम लेते हैं—

तत्र वसिष्ठ पृथुग्विद्वि समुभावा । तप सदेव जायते पावा ॥

वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र का विद्यादान देना, अग देश और

गगा-सरयू-सगम की कथाये, ताड़का का वृत्तांत की अप्रासंगिक कथाएँ सविस्तार है। स्वयं ताड़का वध यहाँ पच्चीस छन्दो में है, तुलसीदास ने उसे एक ही चौपाई में समाप्त कर दिया है—

चले जात मुनि दीन्ह देखी । मुनि ताड़का क्रोध कर धाई ॥

एकहि वान प्रान हरि लान्हा । दीन जानि तेहि निजपद दान्हा ॥

(बालकांड २०९)

बाल्मीकि में इसके पश्चात् विश्वामित्र का अस्त्र-शस्त्र दान और राम-द्वारा उन्हें ग्रहण करने और मानसिक अस्त्र का रूप देने का वर्णन है। तुलसी में न यह अस्त्र-शस्त्र-स्वयं उपस्थित होते हैं, न मानसिक अस्त्र-शस्त्र का रूप ग्रहण करते हैं तुलसी केवल उल्लेखमात्र कर देते हैं—आयुध सर्व-समर्पि के २०९ इसके बाद राम यज्ञ-रक्षा का भार ग्रहण करते हैं और राक्षसों का सहार करते हैं। मानस में यह सब कथा केवल ५ चौपाइयों में अत्यन्त द्रुतगति से कह दी गई हैं। युद्ध-प्रसंग का निर्देशमात्र है। तदनन्तर विश्वामित्र राम से मिथिला के धनुषयज्ञ की कथा कहते हैं और उन्हें साथ लेकर चलते हैं। तुलसी में इसका भी इंगित-मात्र है—

तब मुनि सादर कहा बुझाई । चरित एक प्रभु देखिय जाई ॥

वनुष यज्ञ मुनि रघुकुलनाथा । हरषि चले मुनिवर के साथ ॥

(बालकांड २१०)

बाल्मीकि में विश्वामित्र राम से मार्ग में अनेक अप्रासंगिक कथाएँ कहते हैं। तुलसी ने इनमें से केवल गगा की कथा का निर्देश किया है—

गाधि सुनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥

(बालकांड २१२)

इसके बाद गौतम के आश्रम में विश्वामित्र अहल्या शाप की सारी कथा सुनाते हैं। तुलसी में केवल इंगित है—

सकल कथा मुनि कही विशेषी ।

(बालकांड २१०)

वाल्मीकि में अहल्या नारी शरीर में ही प्रस्तररूप में है, परन्तु अदृश्य है क्योंकि गौतम के शाप से कोई उसे देख नहीं पाता। तुलसी में अहल्या शिलारूप में है। तुलसी ने इस कथा में आध्यात्म रामायण को ही अपना आधार बनाया है। वाल्मीकि में जनकपुर प्रवेश का वर्णन नहीं है। विश्वामित्र सीधे जनक की यज्ञ-सभा में पहुँचते हैं। वहाँ जनक और उनके पुरोहित शतानन्द उनका स्वागत करते हैं और विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से उनका परिचय कराते हैं। तुलसी में ऋषि के आने का समाचार सुनकर सचिव के साथ जनक उनसे आकर मिलते हैं। इस समय राम फुलवारी देखने चले गये हैं। वे लौटते हैं तब जनक के पूछने पर विश्वामित्र उनका परिचय करा देते हैं। वाल्मीकि में स्वयम्बर की आयोजन नहीं है। वहाँ जनक की आज्ञा पाकर मंत्री ५००० महापराक्रमी योद्धाओं से खिंचा कर वह रथ जनक के सामने ले आते हैं जिसमें धनुष रखा है। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम धनुष को तोड़ देते हैं। इसके बाद विश्वामित्र की सलाह से जनक मंत्रियों को राजा दशरथ को बुलाने को अयोध्या भेज देते हैं। तुलसी में यह सारी कथा दूसरे ही ढंग पर है। उसमें अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो वाल्मीकि में नहीं हैं। उदाहरण के लिये राम का जनकपुर भ्रमण और पुरनारियों के राम-दर्शन की कथाएँ जो भागवत से ली गई हैं और सीता के पूर्वानुराग की कथा जिसका आधार हनुमन्नाटक है। हनुमन्नाटक के आधार

पर ही तुलसी स्वयम्बर को योजना करते हैं, परन्तु इसमें भी इतनी मौलिकता रखते हैं कि राम के शौर्य की प्रतिष्ठा के लिये परशुराम प्रसंग स्वयम्बर की कथा में ही मिला देते हैं। वाल्मीकि रामायण में परशुराम के दर्शन लौटती हुई बरात को मार्ग में होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण में रामचरितमानस की रामकथा के एक महत्त्वपूर्ण बड़े भाग (२१८—२८९) का अभाव है। वाल्मीकि रामायण में जनक के दूतों के अयोध्या पहुँचने, सीता स्वयम्बर का वृत्तान्त सुनाने और राजा दशरथ तथा बरातियों के जनकपुर पहुँचने की कथा केवल २० छंदों में कह दी गई है। तुलसीदास ने इस कथा को अत्यन्त काव्यात्मक रूप दिया है और दूतों के नगर पहुँचने, राजा दशरथ को पत्र देने, राजा का दोनों भाइयों को कुशल-क्षेम पूछने, दूतों के सारी कथा को दुहराने, राजा का रनिवास जाकर पत्रिका सुनाने, रानियों को उछाह, बरात की सजावट, बरात के वर्णन में काव्य की सुन्दरतम प्रतिष्ठा की है। वाल्मीकि रामायण में विवाह की कथा केवल एक अध्याय में ४० छंदों में है। उसमें लोकाचार और वैवाहिक रीतियों को किंचित् भी स्थान नहीं मिला है। तुलसी में विवाह की कथा अत्यन्त विस्तारपूर्वक कही गई है (३०५-३४३)। उसमें अनेक वैवाहिक विधि-विधानों का वर्णन है और पक्ति-पक्ति में रसपूर्ण स्थल है। स्वयम्बर के अवसर पर परशुराम की अवतारणा के साथ लक्ष्मण-परशुराम-सवाद की भी आयोजना है जिसका आधार हनुमन्नाटक है परन्तु उसको इस प्रसंग में अत्यन्त रोचक बना दिया है। तुलसी (३४४—३६०) में अयोध्या पहुँचने, बरात के स्वागत, बधू-गृह-प्रवेश, कुलदेव-पूजा, नेग-जोग-दान, माताओं के उत्साह और वात्सल्य, विश्रामित्र की विदा जैसे कितने ही मौलिक प्रसंग मिलते हैं।

साधारण ढंग से वाल्मीकि और तुलसी के अयोध्याकांडों की

कथाओं में विशेष अन्तर नहीं है परन्तु अनेक स्थलों पर मथा-विस्तार में अन्तर अवश्य है। तुलसी में कुछ ऐसी बातें भी हटा दी गई हैं जो मर्यादा या धर्मभावना के विरुद्ध हैं जैसे २४वे अ-ध्याय या सर्ग की सामग्री (राम का कौशल्या को पतिसेवा का उपदेश, राम के दैवी बल का वर्णन, राम को वन जाते देख कौशल्या का उनका स्वस्त्ययन करना, सगरपुत्र की कथा, दशरथ-कौशल्या का सवाद और श्रवण-कुमार की कथा) शेष कांड में जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है कोई अन्तर नहीं है।

तुलसी ने मथरा के मनोविज्ञान को भलीभाँति प्रकट नहीं किया है। उन्होंने “गई गिरा मत फेरि” कह कर दैव का महारा लिया है। वाल्मीकि ने मथरा का सौन्दर्य यथार्थ रूप में चित्रित किया है। उनकी मथरा के दुःख का कारण यही है कि वह कैकेयी की धाय है और उसका उत्कर्ष चाहती है। इसी दैव की अनुपस्थिति के कारण वाल्मीकि की कैकेई का चित्र अत्यन्त स्वाभाविक हो जाता है। परन्तु वाल्मीकि में कैकेई जितनी जल्दी बदलती है उतनी जल्दी तुलसी में नहीं। वहाँ मथरा की ओर से बहुत अधिक प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार वरदान-प्राप्ति का प्रसंग भी अत्यन्त सक्षेप में है। उसमें विशेष मार्मिकता नहीं है। तुलसी ने महाराज दशरथ की मनोव्यथा को विशेष चित्रित किया है। वाल्मीकि में अभिषेक का विस्तारपूर्वक चित्रण है। कांड की कथा में कोई अन्तर न होने पर भी विषय-विस्तार के कारण भेद हो जाता है, वह भेद उपस्थित है। तुलसी ने उत्तरार्द्ध को खड्काव्य (भरतचरित) के रूप में लगभग स्वतन्त्र रूप से रचा है और चित्रकूट में जनक के आगमन, कई सभाओं और पारस्परिक शिष्टाचार आदि के विस्तृत वर्णन से नवीन सामग्री सजा कर रखी है।

तुलसी के अरण्यकांड की कितनी ही कथायें वाल्मीकि रामायण

के अयोध्याकांड में आ जाती है। तुलसी का अरण्यकांड इन्द्रपुत्र के गवहरण से आरम्भ होता है जिसकी कथा वाल्मीकि में नहीं है वाल्मीकि के अयोध्याकांड की वह कथा तुलसी में नहीं है जिसमें राक्षसों के उत्पात के भय से कुलपति तपस्वियों के आश्रम-त्याग का वर्णन है। तुलसी कहते हैं—

बहुरि राम अम मन अनुमाना । होइहि मारि सवहि मोहि जाना ॥

सकल मुनिन्ह सब पिदा कराई । सीता सहित चले दोउ भाई ॥

राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं। तुलसी के अरण्यकांड में अत्रि भक्त हैं और प्रार्थना करते हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि में नहीं है। दोनों में अनुमृया सीता को मर्त्याय धर्म का उपदेश देती है (तुलसा ५ वाल्मीकि ११६)। वाल्मीकि के अगले अध्याय की कथा जिसमें सीता ने अनुमृया को अपनी कथा सुनाई तुलसी ने बेकार समझ कर छोड़ दी है।

अत्रि से विदा होकर राम दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं। स्थान-स्थान पर ऋषि आश्रमों में उनका वागलंग्कार करते हैं, परन्तु तुलसी इन सत्कार-कथाओं का केवल इंगित कर देते हैं। इसके बाद विराध-वध और विराध के पूर्वजन्म वृत्तान्त की कथा है। विराध राम-लक्ष्मण से युद्ध करता है, अन्त में उन्हें कंधे पर चढ़ा कर भागता है, तब राम-लक्ष्मण बाढ़ तोड़ कर उसका वध करते हैं। परन्तु तुलसी केवल इतना लिखते हैं—

मिला असुर विराध मग जाता । आवन हो रघुवीर निपाता ॥

वाल्मीकि में शरभग की कथा विस्तार से है जो तुलसी में अत्यन्त सक्षेप में है—तुलसी ने अप्रासंगिक विस्तार छोड़ दिये हैं।

बाल्मीकि मे ऋषि राम के पास आकर राक्षसों के द्वारा मरे हुए व्यक्तियों (ऋषियो) के अस्थि समूह दिखाते हैं, तुलसी मे राम स्वयं अस्थि-समूह देख कर पूछते हैं और प्रण करते हैं—निसिचर हीन करउँ महि । इसके बाद राम सुतीक्ष्ण की भेंट है । तुलसी ने कथा को अत्यन्त भावनापूर्ण बना दिया है जिसका बाल्मीकि मे अभाव है । बाल्मीकि मे गीधराज जटायु-मिलन का सविस्तार-वर्णन है । तुलसी मे केवल इंगित है—

गीधराज सै भेंट भइ बहु विधि प्रीति बढाइ ।

गोदारी निकट प्रभु रहे परन गृह छाये ॥ १३ ॥

बाल्मीकि मे लक्ष्मण हेमन्त का वर्णन करते हैं । तुलसी ने इस स्थान पर अध्यात्म के आधार पर राम से ज्ञानविज्ञान की चर्चा कराई है (१५, १६) । तुलसी मे शूर्पनखा के अग-भग और खरदूषण-वध की कथा अपेक्षाकृत सक्षेप मे है । बाल्मीकि मे अकम्पन रावण को यह खरदूषण-वध की बात सुनाता है, फिर शूर्पनखा । तुलसी मे केवल शूर्पनखा को लिया गया है । बाल्मीकि मे मारीच-रावण-वार्तालाप अत्यन्त विस्तार मे है, तुलसी मे यह सब कथा बहुत सक्षेप मे है । तुलसी का राम द्वारा सीता का अग्निप्रवेश (२४) बाल्मीकि मे नहीं है । तुलसी नहीं चाहते कि रावण सीता को स्पर्श कर ले, इससे वह छाया ही छू पाता है । जहाँ बाल्मीकि सीता द्वारा लक्ष्मण को अपशब्द कहलाते है, वहाँ तुलसीदास केवल सकेत करके ही रह जाते है (मरम वचन जब सीता बोला २८) । रावण का यती वेश मे आना, रावण का सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करना, सीता का तिरस्कार आदि बाल्मीकि रामायण मे विस्तार-सहित वर्णित है । मानस मे अत्यन्त सक्षेप में सीता की मर्यादा की रक्षा करते हुए ।

वाल्मीकि में सीताहरण के बाद रावण सीता को अशोकवाटिका में मिलता है—तुलसी भी ऐसी कथा इसमें पाते थे ।

इसके बाद मारीच-वध के लौटते राम से लक्ष्मण की भेंट (५९) आश्रम को शून्य पाकर राम का विलाप है । तुलसी में यह कथा सन्नेप में है, हाँ विलाप का आदर्श भागवत की गोपियों का हास-विलास है यद्यपि उसमें वह साहित्यिकता नहीं है ।

शेष कथाओं और प्रसंगों में कोई विशेष अंतर नहीं है पपासर के वर्णन दोनों में नहीं है । वाल्मीकि ने पपासर का विशद वर्णन किया है । तुलसी में नारद के आने और उनके पास ज्ञानलीलावार्ता का प्रबन्ध किया है जो वाल्मीकि में नहीं है । वाल्मीकि का किष्किधा-कांड पपासरोवर के सुन्दर, सुविस्तृत एवं सश्लिष्ट वर्णन से आरम्भ होता है । तुलसी ने अरण्य में ही इसका थोड़ा वर्णन दे दिया है, यद्यपि वे उसके द्वारा राम का कामोद्दीपन नहीं दिखाते । इसीलिये यह कांड ऋष्यमूक पर्वत पर रामसुग्रीव की भेंट से शुरू होता है । तुलसी में रामलक्ष्मण और हनुमान की भेंट की कथा उन्हीं प्रकार है जिस प्रकार वाल्मीकि में है परन्तु तुलसी ने हनुमान को भक्त बना दिया है और रामचन्द्र को भगवान् । इसी विशेष दृष्टि-कोण के कारण तुलसी ने लक्ष्मण से उस प्रकार दयनीय वचन नहीं कहलाए हैं जिस प्रकार के दयनीय वचन वाल्मीकि ने कहलाये । तुलसी ने हनुमान और राम की भेंट को भक्त और भक्तवत्सल भगवान् की भेंट का रूप दे दिया है । तुलसी बालि को भी रामभक्त बना देते हैं और उसे भगवान् के ईश्वरत्व से परिचित बताकर मृत्युशय्या पर राम की प्रार्थना कराते हैं । इतने सन्नेप में लिखते हुए भी तुलसी प्रसंगवश मित्रता पर अर्धालियाँ लिखना नहीं भूलते । बालि की मृत्यु पर वाल्मीकि रामायण में तारा का

विलाप सविस्तार कहा गया है। तुलसी इसे दो पक्तियों में ही समाप्त कर देते हैं—

नाना विवि विलाप कर तारा । छूटे केश न देह समारा ॥

तारा विकल देखि रघुराया । दान्ह ज्ञान हरि लान्ती माया ॥

बाल्मीकि और तुलसी के वर्पा-शरद के वर्णनों में महान अंतर है। बाल्मीकि प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र उपस्थित करते हैं और वहाँ प्रकृति राम के कामोदीपन में सहायक है। तुलसी में वर्पा और शरद के वर्णन भागवत की शैली में लिखे गये हैं और सश्लिष्ट चित्र उपस्थित न कर नैतिक तत्त्वों की स्थापना करते हैं।

बाल्मीकि में सुग्रीव की सीता खोज में देरी करने पर मृष्ट लक्ष्मण तारा के पास पहुँच कर क्षोभ प्रकट करते हैं और तारा सुग्रीव को समझाती है 'तुलसी में तारा का स्थान हनुमान ने ले लिया है। बाल्मीकि में लक्ष्मण धड़धडाते हुए निःशक्त सुग्रीव के रगमहल में घुस जाते हैं। मानस में ऐंसा नहीं है। वहाँ हनुमान ने पहले ही सुग्रीव को समझा कर बानरों को इधर-उधर भेज दिया है। लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण आगमन की बान सुनकर हनुमान और तारा उन्हें अन्तःपुर में बुला लाये। वहाँ सुग्रीव ने आवर प्रणाम किया। हनुमान ने पहले ही ऋक्ष-बानरों के भेजे जाने की बात-वताकर लक्ष्मण को शान्त किया। बाल्मीकि के अवान्तर कितने ही प्रसंग भागवत में नहीं हैं। बाल्मीकि और तुलसी में सीता-खोज लगभग एक-सी है परन्तु उसमें राक्षस-वध जैसी अप्रासंगिक कथाएँ नहीं हैं। स्वयंप्रभा की कथा दोनों में समान है यद्यपि तुलसी में अपेक्षाकृत सक्षेप में है—

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा । जाइ कमलपद नाएसि माया ॥

नाना भौंति विनय तेहि कीन्ही । अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ॥

बदरी बन कहूँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि सीस ।
 उर धरि रामचरन जुग, जे बंदित अज ईस ॥

शेष कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं। अन्तर है भी तो केवल विस्तार का है।

सुन्दरकांड की कथा भी तुलसी में अत्यन्त सक्षेप में कही गई है। उसमें अनेक अप्रासंगिक कथाएँ छोड़ दी गई हैं। कवि ने वर्णनों की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर केवल कथामात्र पर केन्द्रित की है। वाल्मीकि में हनुमान मीधे रावण के अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं।

वाल्मीकि और तुलसी के चरित्र-चित्रण में महान भेद है। इस भेद के तीन कारण हैं :—१—जहाँ वाल्मीकि एक श्रेष्ठ चरित्रवान का चरित्र लिख रहे हैं, वहाँ तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम राम की लीला लिख रहे हैं। २—वाल्मीकि के चरित्र आदर्श और महान होते हुए भी देवता नहीं हैं यद्यपि कुछ पक्तियों में उन्होंने उन पर देवत्व का आरोपण अवश्य किया है। उनमें मनुष्य की दुर्बलताएँ भी हैं। वे मानव हैं। ३—तुलसी के लगभग सभी पात्र रामभक्त हैं। वास्तव में उनके दो व्यक्तित्व हैं—एक भक्त का, एक साधारण। वाल्मीकि में पात्र इस प्रकार रामभक्त नहीं हैं जिस प्रकार तुलसी के पात्र हैं। पात्रों में रामभक्ति की स्थापना उनकी मौलिक कल्पना है। पात्रों के भक्तिपूर्ण व्यक्तित्व ने उनके स्वाभाविक चित्रण में बाधा डाली है। इसी भक्ति के दृष्टिकोण के कारण विभीषण और मन्दोदरी का चरित्र-चित्रण कुछ इस प्रकार हो गया है कि तुलसी के उद्देश्य से अपरिचित आलोचक इन स्थलों को दोषपूर्ण समझता है। तुलसी ने रामकथा में भी कुछ इस प्रकार के परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं कि चरित्र-चित्रण वाल्मीकि से भिन्न हो गया है। उदाहरण के लिये,

उन्होंने पात्रों को सयमित और मर्यादित करने की विशेष चेष्टा की है। रामायण का प्रत्येक पात्र परिस्थिति विशेष में पहुँचकर आत्म-हत्या करना चाहता है। शौशल्या राम से हठ करती है कि मुझे वन ले चलो नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। सीता और लक्ष्मण भी इस प्रकार की बात कहते हैं। आवेश में आकर वाल्मीकि के ग्रात्र मर्यादा का ध्यान छोड़ देते हैं। राम अपनी माता को पतिव्रत का उपदेश देने लगते हैं। यह अनुचित है। तुलसी में हमें ऐसे प्रसंग नहीं मिलेंगे। वाल्मीकि में लक्ष्मण दशरथ को बाँधकर बलपूर्वक राज्यप्राप्ति की बात रामचन्द्र को सुभाते है। स्पष्ट है कि तुलसी इस प्रकार की बात स्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रकार के परिधर्तनों ने तुलसी के चरित्रों को अधिक प्रिय बना दिया है और उनकी उग्रता दूर की है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने अपने चरित्रों के उन लाल्छनों को धोने की चेष्टा की है जो वाल्मीकि के पाठक मन पर जगाते हैं यद्यपि वे सब कहीं सफल नहीं हुए हैं। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टः लाञ्छित हैं, वे भरत के साथ अत्याचार करते हैं जैसे अनेक स्थानों से सिद्ध हो सकता है। दशरथ राम से कहते हैं—

“जब तक भरत इस नगर से बाहर है, तभी तक तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाना मैं उचित समझता हूँ।”

और जब भरत कैकेय देश से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो वे अपने मन की बात इस प्रकार कहते हैं—

“मैं तो यह सोचकर चला था कि या तो राजा श्रीराम का अभिषेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे।”

इन दोनों अवतरणों से महाराज दशरथ की दुर्बलता प्रकट हो जाती है और उनके मानसिक संघर्ष का पता चलता है। तुलसी ने दशरथ

और भरत के चरित्रों की यह दुबलता दूर कर दी है और उन्हें आदर्श पिता और माता बनाने की चेष्टा की है। जहाँ वाल्मीकि के गुह और भरद्वाज भरत पर सन्देह करते हैं, परन्तु तुलसी तो भरत पर सन्देह करना जानते ही नहीं। उनके भरद्वाज तो भरत को देख कर प्रेम-विह्वल हो जाते हैं। वाल्मीकि के राम वनवास से लौट कर भरत के साथ राज करने की बात स्वीकार करते हैं और लौटने पर उनसे ही राज करने को कहते हैं। यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में एक राजनैतिक चक्र चल रहा है जिसका थोड़ा भी आभास तुलसी में नहीं है। नोचे हम वाल्मीकि और तुलसी के पात्रों की तुलना करते हैं—

१ राम—जैसा हम कह चुके हैं वाल्मीकि के राम श्रेष्ठ चरित्रवान पुरुष है। वाल्मीकि उन्हें सज्जनगुणम्पन्न, मन को वश में करने वाला, बली, धैरवान, पश्वययुक्त, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, सद्गुणभापी और धीरनायक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। रामचन्द्र जी का चरित्र बहुत कुछ इसी आदर्श के अनुरूप है। वाल्मीकि रामायण के राम के चरित्र का अध्ययन करने के लिए अयोध्याकांड और लंकाकांड विशेष उपादेय हैं। अयोध्याकांड में राम केवल एक स्थान को छोड़ कर जहाँ वे आत्महत्या के लिये तैयार होते हैं सब प्रकार से आदर्श है। वे उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और धीर-गम्भीर पुरुष हैं। अरण्यकांड में हमें उनकी गम्भीर विरह-वेदना के दर्शन होते हैं। तुलसी में फिरही राम का चरित्र अधिक सत्य है। तुलसी ने अरण्य, किष्किंधा और सुन्दरकांडों में उन्हें भक्त-वत्सल दिखाने की विशेष प्रकार से चेष्टा की है। अनेक ऋषियों से भेट होने के प्रसंग में भगवान के चरित्र की यह विशेषता स्पष्ट है। वाल्मीकि में इस ओर विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है क्योंकि उनका दृष्टिकोण ही दूसरा था। तुलसी ने इन प्रसंगों को अध्यात्म के आधार पर खड़ा किया

हैं जहाँ राम उसी प्रकार भक्तवत्सल परब्रह्म हैं । देवत्व से रहित श्रेष्ठ मानव राम का चरित्र अत्यन्त ही आकर्षक बन पड़ा है ।

२. लक्ष्मण—दोनों के लक्ष्मण में विशेष भेद नहीं है । वास्तव में तुलसी ने वाल्मीकि और अध्यात्म दोनों के लक्ष्मणों को स्वीकार कर एक कर दिया है । वाल्मीकि के लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव वाले, अतुलनीय वीर योद्धा और जागरूक भ्रातृ-सेवक हैं । तुलसी कुछ उग्र प्रसंगों को हटा देते हैं (जैसे अयोध्याकांड में बन-वास का समाचार सुनकर उनका क्रोध—“हे पुरुष श्रेष्ठ, मैं इस सारी अयोध्या को तेज तीरो से बिना मनुष्यों के कर दूँगा, यदि कोई तेरे विरुद्ध खड़ा होगा । भरत के पक्ष का अथवा कोई उसका हित चाहता है, उन सब को मार डालूँगा”) । इसी तरह वे अयोध्या लौटते सुमित्र से राजा दशरथ के लिये कठोर शब्द कहते हैं, तुलसी के राम उन्हें दबा देते हैं । यहाँ उनका कथन मर्यादा और नीति के विरुद्ध होता है । परन्तु शेष स्थलों पर उग्रता बनी है । मानस के लक्ष्मण का दूसरा रूप जिज्ञासु का है—वह रूप अध्यात्म रामायण से आया है जहाँ लक्ष्मण पचवटी में राम से भक्ति और ज्ञान-विज्ञान की चर्चा चलाते हैं । अध्यात्म में लक्ष्मण राम के ब्रह्मरूप से परिचित हैं और स्वयं भी गुह को उपदेश देते हैं । मानस में भी वे गुह को उपदेश देते हैं ।

३. भरत—तुलसी ने भरत के चरित्र को उद्धव के आधार पर स्वतः रचा है । उनकी उग्रता कम की है और राम-विषयक भ्रातृभक्ति के ऊपर रामभक्ति के स्वर बराबर बजते हैं । तुलसी ने भरत के चरित्र को कई प्रकार प्रिय बनाया है । वाल्मीकि में भरत भाई राम के चरित्र पर सदेह करते हैं, यह तुलसी में नहीं । वे कौशल्या के आगे शपथ खाते हैं और कौशल्या उन पर सदेह-सी

करती हैं। तुलसीदास ने भरत और कौशल्या दोनों का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल बनाया है। वहाँ सशय को स्थान ही कहाँ है ? बाल्मीकि मे भरद्वाज, गुह और लक्ष्मण सब भरत के प्रति शकालु है। तुलसी मे वे इतने शकालु नहीं। तुलसी के भरत का चरित्र और व्यक्तित्व सभी शकाओं के ऊपर है। वे अत्यन्त उज्ज्वल तनुओं के बने हैं। वनपथ और चित्रकूट मे उनके चरित्रों को अत्यन्त अधिक विशद रूप से तुलसी ने रखा है। तुलसी ने भरत को रामभक्ति का आदर्श माना है।

४ बाल्मीकि रामायण मे दशरथ स्पष्टतः कामी है परन्तु इस बात को केवल दवे शब्दों मे कहते हैं। शेष चरित्र-चित्रण एक जैसा है परन्तु जहाँ बाल्मीकि के दशरथ कहते हैं—“मुझे बाँध लो” वहाँ तुलसी के दशरथ अधर्म की बात भी नहीं सोचते, वे तो “प्राण जायँ वरु वचन न जाई” सिद्धान्त की प्रति मूर्ति है, बाल्मीकि मे दशरथ और कैकेई के मन मे राजनैतिक सघर्ष (कूटनीति) अवश्य है। दशरथ राम के साथ सेना आदि भेजना चाहते हैं। इससे कैकेई निराश हो जाती है। फिर वशिष्ठ सीता के साथ के वहाने सेना को साथ कर देते हैं परन्तु राम स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त बाल्मीकि की प्रजा राजा को सामने ही धिक्कारती है—राजा उससे प्रभावित भी होते हैं।

सच तो यह है कि वनवास-प्रसंग चाहे तुलसी ने कितना ही मनोवैज्ञानिक बना दिया हो, परन्तु उन्होंने उसे कूटनीति पर खड़ा नहीं किया। उन्होंने केवल राजा के व्यथित मन के मनोविज्ञान की तस्वीर उतारी है, राजनीतिक सघर्ष (या पडयत्र) का आभास भी नहीं दिया है। बाल्मीकि का यह प्रसंग अत्यन्त स्वाभाविक, बलवान और स्पष्ट है यद्यपि उसमे काव्यमुख इतने नहीं जितने तुलसी मे।

तुलसी के दशरथ ब्रह्म राम के शोक में मरते हैं, वाल्मीकि में पुत्र राम के शोक में, वस्तुतः आत्मग्लानि से। तुलसी में बनवास-प्रसंग को इतना विस्तार नहीं दिया गया है, विशेष कर दशरथ के मनो-वैज्ञानिक संघर्ष को। न उन्होंने सौतियाडाह के यथाथवादी चित्र ही उपस्थित किये हैं। यहाँ लक्ष्य ही दूसरा है, प्रेरणा ही दूसरी है। यहाँ “गई गिरा मति फेर” है ही नहीं। इसीसे तुलसी का अयोध्याकांड पूर्वाद्ध मनोवैज्ञानिक होता हुआ भी वाल्मीकि से निबल है।

५ कौशल्या—कौशल्या को कैकेई का पहले ही डर था, यह “सौतिया डाह” या “सौत का चक्र” कथा के पीछे सीधा ही उभर आता है। कौशल्या राम को कहीं जान के लिये भी नहीं जाती है, नित्य के विरुद्ध भी मरकाती है, आत्महत्या की धमकी भी देती है, राजा का भी डाँटती है—परन्तु मानस की कौशल्या तो मर्यादापुरुषोत्तम राम की माँ है। उनसे इस - दृष्टि का की आशा क्यों है? वह सहज-गुंछ तो राम ही जैसा भरत को मानती है, उन पर वाल्मीकि की कौशल्या की तरह सन्देह नहीं करती।

६ सुमित्रा—सुमित्रा बनवास की बात सुनती है तो उसके पहले उद्गार स सौतो का परिस्थिति समझ में आ जाती है। शेष चित्रण एक जैसा है। जहाँ वाल्मीकि में सुमित्रा पुत्र को भाई के प्रति कृतव्य की शिक्षा देती है, वहाँ तुलसी में वह राम का वास्तविक स्वरूप जान कर लक्ष्मण को रामभक्ति का उपदेश देती है।

७. कैकेई—तुलसी ने कैकेई के चित्र को रामभक्ति के कारण दुर्बल बना दिया है। सौतियाडाह और पुत्रप्रेम की प्रबलता—ये दो मुख्य सूत्र थे जिनसे वह परिचालित थी परन्तु तुलसी ने दैव का आरोप कर उसके चरित्र को भिन्न धरातल दे दिया है। जो हो, उनका कैकेई का चित्रण सहृदयपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

८ गुह—गुह राम का मित्र और सेवक है, परन्तु तुलसी ने उसे भरत की भाँति उत्कृष्ट श्रेणी का रामभक्त बना दिया है। यद्यपि कथा में विशेष अन्तर नहीं रखा गया है।

९ हनुमान् सुग्रीव, बालि—इनके चित्रण में हम वीरत्व की प्रधानता देखते हैं। हनुमान् सेना-सवालक, चमत्कारी योद्धा आदि के रूप में भी आते हैं। तुलसी ने इन पात्रों में रामभक्ति का समावेश कर दिया है। हनुमान तो दास्यभक्ति में उनके आदर्श ठहरे।

१०. कुम्भकरण—ये वाल्मीकि में नीतिकुशल, धर्मज्ञ योद्धा हैं। तुलसी ने अध्यात्म के आधार पर रामत्व से परिचित भक्त बना दिया है।

११ विभीषण—तुलसी ने हनुमान् से लका में इनकी भेट कराई है। यह नितान्त नवीन योजना है जो अध्यात्म में भी नहीं है। वहाँ विभीषण पहले ही रामोपासक के रूप में मिलते हैं। घर पर रामनाम लिखे रहते हैं और तुलसी का पेड़ लगाये रखते हैं। इससे उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल हो गया है और उनका भ्रातृद्रोह भक्ति के आगे दब जाता है। वाल्मीकि में विभीषण भ्रातृद्रोही, राज्यलम्पट और कुलघाती ही है। भीरु तो है ही।

१२ रावण—सारे युद्धकांड में राम और रावण का व्यक्तित्व ही व्याप्त है और वाल्मीकि ने वीरकाव्य की दृष्टि से ही उनका चरित्र-गठन किया है। रावण राम का योग्य प्रतिद्वन्दी नायक है, परन्तु तुलसी में स्पष्टतः रामतत्त्व से अभिन्न, हठी, राम को मनुष्य समझने वाला (जिसके लिए तुलसी उसे बारबार धिक्कारते हैं), योद्धा है। रामायण में वह अदम्य उत्साही, कूटनीतिज्ञ और नीति-निपुण है। तुलसी के मानस के सारे पात्र राम के ब्रह्मत्व से परिचित

और उनके भक्त हैं, एक रावण ही उनके तत्त्व से अपरिचित है—वही नहीं, वह स्पष्ट रूप से ही उनका विरोध करता है। अध्यात्म रामायण में रावण भी प्रच्छन्न भक्त है, राम के ब्रह्मत्व से अपरिचित है।

वाल्मीकि और तुलसी के प्रकृति वर्णनों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध प्रकृति चित्रण की दृष्टि से वाल्मीकि तुलसी से कहीं उत्कृष्ट है। दोनों में प्रकृति-वर्णन के महत्त्वपूर्ण स्थल पपा-सरोवर का वर्णन और शरद-वर्षा-वर्णन है। वाल्मीकि में पपासरोवर का वर्णन सश्लिष्ट है यद्यपि उसमें उद्दीपन भाव की स्थापना भी की गई है। राम लक्ष्मण से कह रहे हैं—“यह पपा देखने में अति सुन्दर मालूम होती है इसकी नीली और पीली घास मुझे अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती है, मालूम होता है कि अनेक प्रकार के वृक्षों के नाना पुष्पों की राशि एकत्र की गई है। इन वृक्ष शिखाओं के अग्रभाग फूलों से लद गये हैं, पुष्पित अनेक लताएँ उनके चारों ओर लिपटी हुई हैं। लक्ष्मण, यह सुखकर हवा चल रही है, यह कामोद्दीपक समय है, सुगन्ध-युक्त चैत्र-मास है, वृक्षों में फल-फूल लग गये हैं। लक्ष्मण, फूलें हुये इस वन का सुन्दर रूप देखो। मेघ के समान ये पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। ये वन के अनेक वृक्ष हवा से कपित होकर समतल पत्थरों पर पुष्प-वृष्टि करके पृथ्वी को ढँक रहे हैं। लक्ष्मण, देखो, वृक्षों से जो फूल गिर गये हैं, जो गिरने वाले हैं अथवा जो अभी वृक्षों में लगे हुए हैं, उनसे हवा खेल रही है। फूलों से लदी हुई वृक्षों की शाखाओं को कँपा कर जब हवा वहाँ से चलती है, तब भ्रमर उसके पीछे गाता हुआ चलता है। मस्त कोकिलों के शब्द से वृक्षों को मानो नाचने की शिक्षा देती हुई, पर्वत की गुफा से निकली वायु, गाती हुई मालूम पड़ती है। वायु चारों ओर से वृक्षों को कँपा रही है, पर इन वृक्षों की शाखाओं के अग्र

भाग इस तरह मिले हुए हैं मानो जुट गये हो गुथे हुए हो। चदन से शीतल इस दक्षिणी वायु का स्पश बढ़ा ही सुखकर जान पड़ता है, पवित्र गंध लाकर यह हवा थकावट दूर करती है। मधुर गंध वाले इस वन में भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं मानो हवा से कपित वृक्ष गा रहे हो और भ्रमर उनका अनुसरण कर रहे हो। रम्य पर्वत शिखरों पर उत्पन्न फूल वाले मनोहर वृक्षों के कारण पर्वत ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानो उनके शिखर आपस में जुटे हो × × लक्ष्मण, इस वन में अनेक पक्षी बोलते हैं और यह वसन्त सीता के विरह काल में मेरा शोक और बढ़ा रहा है शोक से पीड़ित मुझको कामदेव सता रहा है और यह कोकिल तो मुझे प्रसन्नतापूर्वक ललकार रही है, अपनी विजय की घोषणा कर रही है। इस वनैले सोते के समान जल-कुक्कुर प्रसन्न होकर बोल रहा है और कामयुक्त मुझको दुखी बना रहा है। इसका शब्द सुनकर मेरे साथ रहने वाली मेरी प्रिया सीता प्रसन्न होकर मुझे बुलाती थी और बहुत प्रसन्न होती थी।” तुलसी का पपासरोवर वर्णन इस ढंग का नहीं है, वह बहुत कुछ भागवत के वर्षा शरद ऋतु वर्णन के आधार पर लिखा गया है। वास्तव में तुलसी के लिये प्रकृति-वर्णन अप्रधान है, नैतिक और धार्मिक तत्त्वों की स्थापना प्रधान है—

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पपा नाम सुभग गभीरा ॥
सत हृदय जस निर्मल बारी । बोंवे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पियहि विविध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

पुरइनि सघन ओट जल वेगि न पाइअ मर्म ।
मायाद्वज न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥

मुखी मीन सब एक रस, अति अगाव जल मॉहि ।

जया धर्मसीलन्हि के, दिन मुख सजुत जाहिं ॥

विकसे सरसिज नाना रगा । मधुर मुखर गुजत बहु मृदा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहसा । प्रभु विलोकि जनु करत प्रसासा ॥
चक्रवाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहि जाई ॥
सुन्दर खगगन गिरा सुहाई । जात पयिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये । चहुँ दिसि कानन विटप सुहाये ॥
चपक बकुल कदम्ब तमाला । पाटल बनस पराम रमाला ॥
नवपल्लव कुमुमित तरु नाना । चचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मद सुगध सुभाऊ । सतत बहइ मनोहर वाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करही । मुनि रव सरस न्यान मुनि टरही ॥

फल भारन नमि विटप सब, रहे भूमि निअराइ ।

पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहि सुसम्मति पाइ ॥

(कि० २८-३०)

बाल्मीकि और तुलसी के वर्षा-शरद-वर्णन के अन्तर का हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं। तुलसी के वर्षा-शरद का आधार बाल्मीकि नहीं, भागवत है। उन्होंने भागवत का आधार लेकर प्रकृति के विकार द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक मर्यादा और शील की स्थापना की है। तुलसी ने भागवत की तरह दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया है और जहाँ भागवत के भौतिक उपकरणों को लिया गया है, वहाँ-वहाँ भी थोड़ा परिवर्तन कर दिया गया है। उनकी प्रकृति धर्मशीला है। वह धर्म के सरक्षण में सदैव तत्परा है। तुलसी

के भक्त भरत जब चित्रकूट में स्थित राम से मिलने जाते हैं, तब बादल उनके ऊपर छाया करते हैं—

किएँ जाहि छाया जलद, सुखद बहइ वर वात ।

तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥

उनका चित्रकूट-दर्शन भी इसी धर्मभावना से प्रभावित है—

लखन दीख पथ उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि मारा ॥

नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ॥

चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठमेरी ॥

(अयोध्याकांड)

वाल्मीकि के प्रकृति-चित्रण में कोई धर्मभावना नहीं है और न वे नैतिक तत्त्वों की स्थापना करते हैं। उनके काव्य में प्रकृति का प्रयोग केवल दो प्रकार से हुआ है—१. साधारण सश्लिष्टात्मक वर्णन के रूप में और २ उद्दीपन के रूप में। तुलसी में पहले प्रकार के वर्णन का तो अभाव है, दूसरे प्रकार के वर्णन भी केवल सीता-वियोग के समय है जहाँ राम वृद्धों आदि को सम्बोधन करते हैं जो वाल्मीकि के इसी प्रसंग से प्रभावित हैं। जैसा हम कह चुके हैं तुलसी का प्रकृति-वर्णन मूलतः नैतिक और धार्मिक तत्त्वों से प्रभावित है, परन्तु कुछ स्थानों पर उन्होंने हिन्दी कवि परम्परा का भी आश्रय लिया है।

वाल्मीकि रामायण की अधिकांश कथा वर्णनात्मक है और उसमें काव्य के गुणों का अभाव है। वाल्मीकि के नायक राम मुख्यतः धीरनायक और योद्धा है और कथा का अधिकांश भाग युद्ध वर्णनों से भरा पड़ा है। वाल्मीकि वीर-रस-प्रधान काव्य है

और इसीसे युद्धकांड सबसे विस्तृत है। बाल्मीकि के इसी दृष्टिकोण के कारण वीररस का परिपाक अधिक हुआ है। अकेले युद्धकांड में ही अनेक वीर-रस-पूर्ण प्रसंग आये हैं, परन्तु उनमें विभिन्नता बहुत कम है। अन्य रसों का परिपाक बाल्मीकि में नहीं हो पाया है। बाल्मीकि और तुलसी के अयोध्याकांडों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि बाल्मीकि की वर्णनात्मक शैली में रस परिपाक का अधिक स्थान नहीं है। बाल्मीकि में वीभत्स और भव-नक रसों के विशेष प्रसंग नहीं हैं, परन्तु तुलसी में उन्हें स्थान मिला है। वीर-रस-प्रधान काव्य होने के कारण बाल्मीकि में रौद्ररस के अनेक स्थल हैं। शांत और भक्तिरसों का तो यहाँ एकदम अभाव है। तुलसी की समस्त रामकथा में भक्ति किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है। सत्तेप में, बाल्मीकि वर्णन करके ही रह जाते हैं, कविता-कला को पुट नहीं देते।

३ अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस—तुलसी ने रामचरितमानस की कथा का ढाँचा मुख्यतः अध्यात्म को ही माना है, विशेषतः अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर और उत्तर की सामग्री बहुत कुछ इसी पर आधारित है।

अध्यात्म रामायण और मानस लगभग एक ही प्रश्न से शुरू होते हैं। अध्यात्म रामायण में पावती पूछती हैं—“कोई-कोई कहते हैं कि राम परब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत हो जाने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। इसलिये अन्य (वशिष्ठादि) के उपदेश से उन्होंने आत्मतत्त्व जाना।” (१।१३) “यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे तो उन परमात्मा ने सीता के लिये इतना विलाप क्यों किया?” (१।१४) दोनों ग्रन्थों में राम-सीतातत्त्व में समानता है। सीता हनुमान् से कहती है—“वत्स हनुमान्, तम

राम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्द धन परब्रह्म समझो. ये निःसन्देह समस्त उपाधियों से रहित, सत्ता मात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषम, आनन्दधन, निर्मल, शांत, निर्विकार, निरञ्जन, सर्व व्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही है। और मुझे ससार की उत्पत्ति, स्थिति और अंत करनेवाली मूल प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी सन्निधिमात्र से इस विश्व की रचना किया करती हूँ।” मानस में राम को जगदीश और सीता को माया कहा गया है।

रामचरितमानस की समस्त कथा अध्यात्मरामायण की कथा को सामने रखकर लिखी गई है और विस्तार एवं भक्ति-विषयक विशेष परिवर्तन के सिवा दोनों में अंतर नहीं है। वास्तव में अध्यात्म की कथा में वाल्मीकि की कथा ही थोड़े परिवर्तनों के साथ, सक्षेप में उपस्थित की गई है। वह वाल्मीकि रामायण की ही था है परन्तु उसका महत्त्व अध्यात्मज्ञान है या रामभीतातत्त्व भीमासा। तुलसी इस भीमासा से कुछ हद तक सहमत है। राम सीता के ब्रह्म-प्रकृति होने के विषय में उनके वही सिद्धान्त है—भक्ति के सम्बन्ध में भी वे लगभग वही कहते हैं परन्तु जीव, ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध में वह कुछ भिन्न विचार रखते हैं। अध्यात्म वेदान्त (अद्वैत) ग्रन्थ है। तुलसी ने जीव को “अश” कहा है। वह “भेदभगति” के कायल है। वह इस विषय में विशिष्टाद्वैती जान पड़ते हैं। अभेदभक्ति अर तत्त्वज्ञान का अर्थ है—मोक्ष (सायुज्य) अथवा सारूप्य, परन्तु तुलसी सान्निध्य और सालोक्य ही पसन्द करते हैं।

अध्यात्मरामायण में कथा का विकास इतनी क्षिप्र गति से हुआ है कि किसी प्रकार के काव्यगुण को प्रगट होने का समय नहीं

मिला है। रस, अलंकार, सवाद, वर्णन—सभी की दृष्टि से अध्यात्म बहुत कुछ शून्य है। रचयिता का ध्येय परमात्मनत्त्व का निरूपण है। कहीं-कहीं भक्ति की भी सुन्दर व्याख्या है, परन्तु इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में भावुकता और सहृदयता को स्थान नहीं मिला है, यहाँ तक कि राम और सीता के दो-चार सुन्दर चित्र भी उसमें नहीं हैं। हाँ, अध्यात्म-क्षेत्र से ली हुई उपमाएँ अवश्य नवीनता प्रगट करती हैं—कहीं-कहीं तुलसी उनके ऋणी हैं जैसे—

अग्रे आस्याभ्यह पञ्चावमन्वेहि धनुर्वर ।

आवयोमयगा सीता मायेवात्म परात्मनो ॥

(अरण्य सर्ग १)

आगे राम लखन पुनि पाछे । तापस वेम विराजत काछे ॥

उभय बीच सिय सोहत कैसी । जीव ब्रह्म बिच माया जैसी ॥

(अयोध्याकांड)

अध्यात्म रामायण में वर्णन अवश्य अच्छे हैं परन्तु उनका आधार वाल्मीकि है और सत्सप में होने के कारण वे भली भाँति विकसित नहीं हो सके हैं।

जहाँ सत्सप में कहने की प्रवृत्ति इतनी है, वहाँ मनोविज्ञान के लिये स्थान कहाँ ? अयोध्याकांड—जैसा मनोवैज्ञानिक परिस्थिति प्रधान कांड गिनती के श्लोको में समाप्त कर दिया गया है। परशुराम लक्ष्मण तो हैं ही नहीं।

चरित्र-चित्रण की ओर भी विशेष प्रयत्न नहीं है। पात्रों के

चरित्र की रेखा बाल्मीकि के आधार पर ही गढ़ी गई है। साधारणतः रामकथा में जिस प्रकार का चरित्र-चित्रण हो सकता था, वह है। लेखक की ओर से विशेष प्रयास कहीं भी नहीं है।

परन्तु बाल्मीकि की कथा का धरातल लौकिक है यहाँ भक्ति पूर्ण आध्यात्मिक। अतः पात्रों में रामभक्ति की भी व्याप्ति है यद्यपि उतनी नहीं जितनी तुलसी में। राम ब्रह्म हैं, ये सभी जानते हैं भक्त उनसे स्मरूप्य मोक्ष और भक्त के वरदान की आशा रखते हैं। विरोधी दल के कुम्भकर्ण, मन्दोदरी, शकुमारण, माल्यवान विभीषण सभी रामभक्त हैं। यहाँ तक कि रावण भी प्रच्छन्न रामभक्त है। मुक्ति की आशा में ही लड़ रहा है। तुलसी में रावण एकदम राम की ब्रह्मसत्ता को अस्वीकार कर देता है। वह भीषण जड़वाद का प्रतीक बन गया है। वहाँ वह प्रच्छन्न भक्त नहीं है। देवताओं की स्थिति वही है जो भागवत में है। वे स्वार्थी और भीरु हैं। सदैव खड़े फूल बरसाते रहते हैं।

अध्यात्म रामायण भी मानस की तरह भक्तिग्रथ है। ग्रन्थकार का इस सम्बन्ध में यह मतव्य है—

“भक्तवत्सल जगन्नाथ श्री राम के प्रपन्न होने पर ससार में क्या दुर्लभ है। देखो, उनकी कृपा से नीच जानि में उत्पन्न शत्रु ने भी मोक्षपद प्राप्त कर लिया। फिर श्री राम को ध्यान करनेवाले पुण्यजन्मा ब्राह्मणादि यदि मुक्त हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है? निःसन्देह भगवान राम की भक्ति ही मुक्ति है। अरे लोगों, राम की भक्ति ही मुक्ति देने वाली है। अतः उनके कामधेन-रूप चरण-युगलो की अति उत्साहपूर्ण सेवा करो। हे बुद्धिमान लोगो, इन विविध-विज्ञान वार्ताओं और मंत्र-विस्तार को अलग रखकर

तुरन्त ही श्री शंकर के हृदय धाम में शोभा पानेवाले श्याम शरीर भगवान राम का भजन करो ।”

(अरण्यकांड १०, ४२—४४)

भक्ति के साधनों की चर्चा कई स्थान पर हुई है ।

“ अब मैं अपनी भक्ति के कुछ वास्तविक उपाय बताता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥४७॥

मेरे भक्त का मत्संग करना, एकादशी आदि का व्रत करना, मेरे पर्व दिनों को मानना ॥ ४८ ॥ मेरी कथा के सुनने पढ़ने और उसकी व्याख्या करने में सदा प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम कीर्तन करना ॥ ४९ ॥ इस प्रकार मुझमें अविचल भक्ति हो जाती है । फिर बाकी ही क्या रहता है ॥ ५० ॥

(अरण्य—लक्ष्मणगीता)

“हे भामिनि, मैं संक्षेप में अपनी भक्ति के साधनों का वर्णन करता हूँ उनमें पहली साधना तो मत्संग ही कहा गया है ॥ २२ ॥ मेरे जन्म-कर्मों की कथा का कीर्तन करना दमरा साधन है मेरे गुणों की चर्चा करना—यह तीसरा उपाय है और (गीता उपनिषदादि) मेरे वाक्यों की व्याख्या करना उसका चौथा साधन है ॥२३॥ हे भद्रे, अपने गुरुदेव की निष्कपट होकर भगवद् वृद्धि में सेवा करना पाँचवा, पवित्र स्वभाव यम-नियमादि का पालन और मेरी पूजा में प्रेम होना छठा, तथा मेरे मंत्र की सांगोपांग उपासना करना सातवाँ साधन कहा जाता है ॥ २४-२५ ॥ मेरे भक्तों की मुझमें भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना और

शम दामादि-सम्पन्न होकर बाह्य पदार्थों में आसक्त न होना—यह मेरी भक्ति का आठवाँ साधन है तथा तत्त्वविचार करना नवाँ है । हे भामिनि, इस प्रकार यह नौ प्रकार की भक्ति है । हे शुभलक्षणे ! जिस किसी में ये साधन होते हैं, वह स्त्री पुरुष अथवा पशुपक्षी आदि कोई भी क्यों न हो उसमें प्रेम लक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है ॥ (२६-२८) भक्ति के उत्पन्न-मात्र से मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है उसे इसी जन्म में निःसन्देह मुक्ति हो जाती है । अतः यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष का कारण भक्ति ही है । जिसमें पहला साधन होता है उसमें क्रमशः ये सभी साधन आ जाते हैं ॥२९॥

(वही, शवरी के प्रति रामगीता)

अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि राम को उनका निवास-स्थान बतलाते हैं, तुलसी ने इसे ले लिया है—

“जो शांत समदर्शी और सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेषहीन है तथा अहिर्निशि आपका भजन करते हैं उनका हृदय आपका प्रधान निवास-स्थान है ॥ ५४ ॥ जो धर्म और अधर्म दोनों को छोड़कर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम, उसके हृदय-मंदिर में सीता के सहित आप सुखपूर्वक रहते हैं ॥ ५५ ॥ जो आप ही के मंत्र का जाप करता है, आप ही की शरण में रहता है तथा द्वन्द्वहीन और निस्पृह है, उसका हृदय आपका सुन्दर मंदिर है ॥ ५६ ॥ जो अहंकार शून्य, शांत स्वभाव, रामद्वेष रहित और मृतपिण्ड, पत्थर तथा स्वर्ण में समान दृष्टि रखनेवाले है, उनका हृदय आपका घर है ॥ ५७ ॥ जो तुम्हीं में मन और बुद्धि को लगाकर सदा सतुष्ट रहता है और अपने समस्त कर्मों को तुममें अर्पण कर देता है

उसका मन ही आपका शुभ गृह है ॥५८॥ जो अप्रिय को पाकर द्वेष नहीं करता और प्रिय को पाकर हर्षित नहीं होता तथा यह सम्पूर्ण प्रपचमात्र है ऐसा निश्चय कर सदा आपका भजन करता है उसका मन ही आपका घर है ॥५९॥ सत्ता, जन्म लेना, बढ़ना बढ़लना, क्षीण होना और नष्ट होना—इन छः विकारों को शरीर में ही देखता है, आत्मा में नहीं तथा बुधा, द्रष्टा, सुख, दुःख और भय आदि को प्राण और बुद्धि का ही विकार मानता है और स्वयं मामागिक धर्मों से युक्त रहता है उसका चित्त आपका निज गृह है ॥६०—६१॥ जो लोग चिद्धन, सत्यस्वरूप, अनन्त, एक, निर्लेप, सर्वगत और स्तुत्य आप परमेश्वर को समस्त अतःकरणों में विराजमान देखते हैं, हे राम, उनके हृदयकमल में आप सीता के सहित निवास कीजिये ॥६२॥ निरन्तर अभ्यास करने से जिनका चित्त स्थिर हो गया है और जो सर्वदा आपकी सेवा में लगे रहते हैं तथा आपके नाम स्कीर्तन से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं उनके हृदयकमल में सीता के सहित निवास गृह है ॥६३॥

परन्तु अध्यात्म में भक्ति को ही एकमात्र साधन नहीं माना है। वास्तव में उसमें ज्ञान पर भी इतना ही (या अधिक ही) बल है। उत्तरकांडातर्गत रामगीता (लक्ष्मण के प्रति) में ज्ञान-साधन का विशद वर्णन है और “तत्त्वमसि” से आगे बढ़कर समाधियोग का उपदेश है। तुलसी ने स्पष्टतः ही ज्ञान को भक्ति से पराभूत किया है।

अध्यात्म रामायण युद्ध अद्वैत वेदांत का ग्रन्थ है जो परमात्मा और जीवात्मा में तत्त्वतः अभेद मानता है। भेद का कारण माया जन्य अज्ञान या अविद्या है। आत्मा ज्ञानमय और सुखस्वरूप है, उसमें दुःख की प्रतीति अध्यास द्वारा ही होती है। भ्रम से जो अन्य

की प्रतीति होती है वह अध्यास है जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति । इसी प्रकार ईश्वर में सप्ता की प्रतीति हो रही है । निरामय, विकल्प मायारहित, चित्स्वरूप आत्मा में “अहंकार” रूप अध्यास के कारण इच्छा, अनिच्छा रागद्वेष और सुख-दुखादि रूप बुद्धि की वृत्तियों का जन्म होता है जो जन्म-मरण का कारण है । अज्ञान (अविद्या) के नाम होने और सत्स्वरूप (तत्त्वमसि) का ज्ञान होने पर भ्रम (अध्यास) का परिहार हो जाता है । परमात्म-भाव (मैं ही ब्रह्म हूँ) के चिंतन में ही मुक्ति है । इसके अतिरिक्त वह यह भी जाने कि समुद्र में जल, दूध में दूध, महाकाश में घटाकाशादि आदि की तरह यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपञ्च भी आत्मा के साथ अभिन्न है और चन्द्रभेद और दिग्भ्रम की भाँति मिथ्या है (रामगीता उत्तरकांड) । अध्यात्म रामायण की भक्ति शुद्ध विज्ञानभक्ति (या अभेदभक्ति है) जिसका फल मोक्ष है ।

४—प्रसन्नराघव (जयदेवकृत) और रामचरितमानस—रामचरितमानस और प्रसन्नराघव के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी इस ग्रन्थ के भी ऋणी है, परन्तु ऋण अधिक नहीं है ।

प्रसन्नराघव रामकथा की दृष्टि से एक विचित्र ग्रन्थ है । यह नाटक है । नाटककार केवल सात अंकों में सारी रामकथा ठूँस देने की चेष्टा करता है । कथा सीता-स्वयंवर से आरम्भ होकर पुष्पक द्वारा अयोध्या लौटने तक चलती है । इतनी बड़ी कथा को इतने थोड़े अवकाश में रखने के कारण नाटककार को कथा का अत्यन्त विचित्र सगठन करना पड़ा है । इस चेष्टा में न उच्च नाटकीय गुणों की रक्षा हो सकी है, न कथा का मौन्दर्य ही सुरक्षित रह सका है । परन्तु मौलिकता का श्रेय तो नाटककार को मिलना ही चाहिये । तुलसी ने प्रसन्नराघव के मौलिक प्रसंगों से लाभ उठाया है ।

प्रथम अंक—सीता स्वयंवर का अवसर है “गजेन्द्रदर्शन-स्निग्ध शलाका सहस्र निर्मितेषु मञ्चेस्वासीना इमे कुङ्कुम कृतांग गगा राजानोऽमलम्फटिक प्रसाद शिखरा मगिनः राजन्ते ।” इस अंक में रावण और वाण के वाग्चातुर्य और पराक्रम का वर्णन है। दोनों धनप नहीं उठा पाते। तुलसी में स्वयंवर में रावण और वाण की उपस्थिति का उल्लेख तो अवश्य है—रावन बान महाभट भारे। देखि सरामन गँवहि मिधारे ॥२५०॥ परन्तु इस अंक की सामग्री बिल्कुल नहीं है।

द्वितीय अंक—इस अंक में रामलक्ष्मण के जनक-वाटिका प्रवेश, सीतादर्शन और राम सीता के पूर्वगग का वर्णन है। तुलसी ने अपने मानस में इन्हे स्थान दिया है। उनका आधार प्रसन्नराघव ही है। (बालकांड २२७—२३६)

तृतीय अंक—इस अंक में धनप-भग की कथा है। तुलसी ने इससे केवल कहीं-कहीं सहारा लिया है (बालकांड २१४—२१७ और २५१—२६२)

चतुर्थ अंक—धनप-भग के उपरान्त राम-परशुराम की कथा है। यहाँ भी परशुराम विवाह के पहले ही उपस्थित होते हैं, लौटती बरात को मार्ग में नहीं मिलते। तुलसी ने स्वयंवरसभा में ही परशुराम को उपस्थित करके अपनी मानिकता का परिचय दिया है क्योंकि इस तरह रामचन्द्र के शौर्य की सार्वभौमिक प्रतिष्ठा हो जाती है।

पंचम अंक की सामग्री राम की बनवास कथा को अत्यन्त सन्क्षेप में, परन्तु मौलिकता के साथ, हमारे सामने रखती है। तुलसी ने इस अंक की सामग्री से कोई सहायता नहीं ली है।

षष्ठोऽअंक :—यहाँ अन्य कथाओं के साथ त्रिजटा सीता की प्रिय सखी के रूप में प्रकट होती है। कदाचित् तुलसीदास ने त्रिजटा का चरित्र यहीं से लिया है। रावण सीता-सम्बाद में भी तुलसी प्रसन्न-राघव के ऋणी है।

सप्तमोऽअंक :—इस अंक की सुग्रीव, विभीषण, राम, हनुमान की वार्तालाप से जिसका विषय चन्दोदय है, तुलसी ने कुछ सामग्री एकत्रित अवश्य की है (लकाकांड १२)—

उद्धाम दिग्विरद चञ्चल कर्णपूर—

गरुडस्थलोच्चलदलिस्तवका कृतानि ।

मीलन्नामासि मृगनाभि समान भासि

दिवकन्दरेषु विलयन्ति तमा तमसि ॥५४॥

पूरव दिसा विलोकि प्रभु, देखा उदित मयक ।

कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असक ॥

पूरव दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेजवल रासी ॥

मत्तनाग तम कुम्भ बिदारी । ससि केहरी गगन बनचारी ॥

पश्योदेति वियोगिना दिनमणि यद्गार दीप्तामणि ।

प्रोढानगभुजगमस्त कमणिश्चण्डीश चूडामणि ॥

तारा मौक्तिकहार नायकमणि कदर्प सीमन्तिनी—

काञ्चीमन्त्रमणिश्चक्रोर पञ्चिन्तागाणि चन्द्रम ॥५६॥

।वखरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुन्दरी केर सिगारा ॥

जयदेव का लक्ष्य शृंगार-काव्य है, अतः वहाँ मर्यादा की

भावना का अभाव है। पूर्वरग सम्बन्धी प्रकरणों से यह बात स्पष्ट रूप से स्थापित हो जाती है। दोनों ग्रंथों में राम लक्ष्मण बाग में गुरु विश्वामित्र के लिए फूल लेने आये हैं—

समय जानि गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

(२२७)

राम *तथावदय भगवान्विश्वामित्रस्तस्त्रभवतो
याज्ञवल्क्यस्य समागम सुखम नुभवति तावत्तदीय सामतन
देवतार्चनोचितानि कुमुमान्य वचीमन्ताम् (पृष्ठ २४)

दोनों में बसन्त विकसित बाग है। प्रसन्नराघवकार का वर्णन सश्लिष्ट और अधिक उत्तम है। तुलसी में हिन्दी कवियों की परिपाटी के अनुसार केवल नाम-वर्णनमात्र है। परन्तु दोनों में सरोवर (सर) है जो मन्दिर के पास है। प्रसन्न राघव में वद्य देवी चडिका है मानस में गौरी। तुलसी ने राम के परस्पर-दर्शन को मर्यादा में बाँध दिया है। प्रसन्नराघव में रामलक्ष्मण के बीच में कोई मर्यादा भाव नहीं है, परन्तु तुलसी पग-पग पर मर्यादा का विचार करते हैं। मानस में (प्रसन्नराघव के विपरीत) सीता स्वयं राजकुमारों को नहीं देखती। सखियाँ दिखलाती हैं—

लता ओट तब सखिन्ह लखाए । श्यामल गौर किसोर सुहाए ॥

(२३२)

प्रसन्नराघव में लक्ष्मण सखी के परिहास में योग देते हैं। सीता पहले उन्हें ही देखती है, राम को बहुत बाद में देखती है।

सीता (विलोक्य सकौतुकम्) अथ्यो,
 विसद्वेसलप्पलुप्पलास पुह्व सामलो ।
 महेस सोम्य सेहरापुरन्तसोम कोमलो ।
 लदाघरम्मि को इयो अणगरु अखण्डणो
 विलो अणारा देह मे सुड सिहरड मण्डणो ॥

(अहो.

विकसित पेशलोत्पलोत्पलाशपुह्व श्यामलो
 महेश मौम्य शेखर स्फुरत्सोम कोमल ।
 लतागृहे कोयऽमनगरूपखगनो
 विलोचनयोर्देदाति मे सुख शिखड मण्डन)

तुलसी मे सखियों के परिहास का प्रसंग मौलिक है । प्रसन्न-
 राघव के विपरीत मानस मे वह बिलकुल चुप है, केवल भावभंगिमा
 मे प्रेम की व्यजना है—

देखन मिस मृग विहग तरु, फिरड बहोरि बहोरि ।
 निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढह प्रीति न थोरि ॥

प्रसन्नराघव मे भतृदारिका आकर लौटने की बात कहती है । मानस
 मे सखियों स्वयम् याद दिलाती है २३४ । सीता ने जाने पर उनके
 विषय मे राम-लक्ष्मण मे जो अमर्यादित वार्तालाप प्रसन्नराघव मे
 होती है, उसे तुलसी स्थान नहीं देते । वे केवल कहते हैं—

हृदय सराहत सीय लोनाई । गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥

(२३७)

५—गीता और मानस—मानस और गीता में अनेक विषयों में महत्त्वपूर्ण साम्य है—(१) गीता की तरह मानस भी अद्वैत का प्रतिपादन करता है।

(२) द्विविध माया और उससे परे आत्मा को दोनों मानते हैं।

(३) दोनों मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ मानते हैं—विषयी, साधक और सिद्ध। इनके अतिरिक्त दोनों में दो और श्रेणियों का वर्णन है दैव और आसुर।

(४) दोनों ग्रंथ एक ही प्रकार की भक्ति की स्थापना करते हैं—

मन्मना भवभद्रभक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु ॥

मत्कर्मकृत्सत्परयो मदभक्त सगर्वजित ॥

सर्ववर्मान् परितज्य मामैक शरणं व्रज ॥

दोनों अनन्य भाव की निष्कामभक्ति (पराभक्ति) को ही मनुष्य की सबसे ऊँची स्थिति समझते हैं। अतएव यह है कि गीता में वासुदेव है। तुलसी में राम। इसलिए तुलसी ने राम को वासुदेव के समकक्ष रखने की चेष्टा की है, उनसे गीताएँ कहलाई हैं, उनका विश्वरूप दिखलाया है। ब्रजलीलाओं का भी कुछ अनुकरण किया गया है (देखिये बालकांड)।

(५) गीता कर्म, ज्ञान और भक्ति का समुन्मय स्थापित करना चाहती है। तुलसी भक्ति का ही प्रतिपादन करते हैं। इससे गीता जीवन के सब अंगों को स्पर्श करती है। तुलसी केवल एक अंग (अध्यात्म) को छूकर रह जाते हैं। यद्यपि भरत, जनक आदि के जीवन में निष्काम कर्म के सचय के उपदेश की झलक है:

परन्तु इसकी सैद्धान्तिक विवेचना नहीं हुई है । तुलसी की तरह गीताकार ने भी भक्ति को सहजमार्ग, अनन्य मार्ग माना है (अध्याय ८) । तुलसी भी ज्ञानी भक्त को विशेष महत्त्व देते हैं यद्यपि विनयपत्रिका में स्वयं वे आर्तभक्त के रूप में उपस्थित हैं । मानस में उन्होंने ज्ञान को बड़ी दूर तक भक्ति के साथ चलाने का प्रयत्न किया है जैसा अंतिम श्लोक से स्पष्ट है—

पुण्य पापहर सदाशिवकर विज्ञानभक्ति प्रद ।

यहाँ वे ग्रन्थ का ध्येय “विज्ञान भक्ति” (ज्ञानाश्रयी भक्ति) की स्थापना कहते हैं ।

अध्यात्म रामायण ने गीता के बहुत से प्रसंग और सिद्धान्त ज्यों-के-त्यों ले लिए हैं । अतः यह कहा नहीं जा सकता कि जिन सिद्धान्तों को हम गीता से प्रभावित मानते हैं वे कितने गीता से प्रेरणा प्राप्त हैं और कितने अध्यात्म से होकर आये हैं, जिसके दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण से तुलसी प्रभावित है ।

हिन्दी साहित्य में तुलसी का स्थान

रामभक्तिकाव्य वैष्णव-काव्य का एक प्रधान अंग है और तुलसी इस काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि है। तुलसी की महत्ता का मूल्यांकन करने का सबसे अच्छा ढंग यह होगा कि उनके काव्य को कृष्ण-काव्य के समान रखा जाय और यह देखा जाय कि वह उससे किस प्रकार भिन्न है और कहाँ उत्कृष्ट है।

कृष्ण-काव्य में राधाकृष्ण को लेकर ऐसे एकात्मिक प्रेम का चित्रण किया गया है जो नैतिक आदर्शों एवं समाज और सयम की नितात अवहेलना करता है। कृष्ण-कवि-भक्त समाज को पीछे छोड़कर भावभूमि की ओर बढ़े हैं। रामभक्तिकाव्य में यह बात नहीं है। उसमें नैतिक आदर्शों को उच्चतम स्थान दिया गया है, समाज की कल्याण-भावना को कवि सदैव अपने सामने रखता है। उसमें मर्यादा-भाव की प्रधानता है। एक प्रकार से उसकी दृष्टि हिन्दू सस्कृति के अभ्युत्थान की ओर है। यही तक नहीं, कवि का दृष्टि-कोण बहुत कुछ अतिनैतिक हो गया है जो आज के युग को अखर भी सकता है। परन्तु इसी सामाजिक कल्याण और सयम की भावना ने राम-काव्य में हिन्दू गृहस्थ-जीवन और दाम्पत्य-प्रेम के अन्यतम चित्र उपस्थित किये हैं। सारे हिन्दी-साहित्य में प्रेम का ऐसा सुन्दर, सयमित और दाम्पत्य-भावपूर्ण चित्रण और कहीं नहीं है जैसा तुलसी के रामचरितमानस में है।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार इस युग का सारा काव्य पौराणिक कथाओं का आश्रय लेता है उसी प्रकार रामकाव्य भी। वह अत्यन्त कड़ी शृङ्खलाओं द्वारा संस्कृत महाकाव्यों और पुराणों से जुड़ा हुआ है। कृष्ण-काव्य संस्कृत आधार पर इतना आश्रित नहीं है जितना राम-काव्य। तुलसी के काव्य को संस्कृत के अनेक रामकथा-काव्यों ने पुष्ट किया है। उसमें पौराणिकता का एक विशिष्ट अंग है। सूरदास के सूरसागर के पदों का सकलन भले ही श्रीमद्-भागवत की कथा को सामने रखकर किया गया हो, इसमें सन्देह नहीं कि उन पदों की रचना के पीछे श्रीमद्भागवत की प्रेरणा ही भर है, न उसकी कथावस्तु से महारा लिया गया है न वह भागवत का अनुवाद ही है। यह सच है कि सम्पूर्ण भागवत् अथवा उसके कुछ भागों के अनुवाद भी कृष्ण-काव्य के अंग हैं परन्तु यहाँ हम उन्हीं रचनाओं की बात कर रहे हैं जिन्होंने कृष्ण-काव्य को उमका विशेष व्यक्तित्व प्रदान किया। जो हो, कृष्ण-काव्य राम-काव्य से अधिक मौलिक है। उसका आधार मध्ययुग के सम्प्रदायों की पूजा-पद्धति और धर्मभावना में है, पुराणकालीन धर्मभावना में नहीं।

हिन्दी के राम-काव्य का सर्वप्रथम कवि कौन है यह निश्चित नहीं। हमें दो कवियों के दो ग्रन्थ प्राप्त हैं जो रामचरितमानस से पहले रचे गये हैं परन्तु राम-काव्य का ठीक-ठीक स्वरूप तुलसी के रामचरितमानस में ही स्थिर हो सका है। मानस मध्ययुग का सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थ है। वह एक ही साथ बहुत कुछ है—धर्मग्रन्थ, महाकाव्य चरित्रकाव्य, व्यवस्था ग्रन्थ (शास्त्र), भक्तिकाव्य, दर्शनकाव्य। वही गीति-पाठ के लिए भी है जैसा उसकी कितनी ही चौपाइयों से निर्दिष्ट है। इसी से उसका निर्माण प्रचलित पुराणकथा-पद्धति पर हुआ है। इसी पद्धति में कथा की रचना सवादरूप में होती है। राम-कथा जहाँ-जहाँ पौराणिकरूप में मिलती है वहाँ-वहाँ सवादरूप

में ही हमारे सामने आई है। इसीसे तुलसी ने भी यही रूप ग्रहण किया।

तुलसी के काव्य की विशेषता यह है कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय के भीतर से नहीं आया है। इसी कारण उसमें किसी विशेष सम्प्रदाय के विशेष दार्शनिक एवं धार्मिक मतवाद का पोषण नहीं किया गया है। अनेक स्थानों पर कवि ने आश्चर्यजनक समन्वय-बुद्धि का परिचय दिया है। इन्हीं कारणों से उसका ग्रन्थ सभी सम्प्रदायों को मान्य रहा है। प्रत्येक सम्प्रदाय मानस को अपने ढंग पर अपनाता और अपने मत का उस पर आरोप करता रहा है। इतना होने पर भी यह आश्चर्य की बात है कि मानस के प्रधान अर्थ में किसी प्रकार की विकृति नहीं हुई है।

पाठक प्रछ सकते हैं कि यह प्रधान अर्थ क्या है। मानस का प्रधान तात्पर्य है भक्तिरसनिरूपण। मानस में कथा-प्रसंग के अतर्गत जितने भी रस आये हैं उन सब का उपसहार भक्तिरस में हुआ है। सारा ग्रन्थ राम की ब्रह्मभावना से भरा हुआ है। राम ब्रह्म हैं। सीता शक्ति है। उनका लौकिक जीवन लीला-मात्र है। समार माया है। माया राम की दासी है, उन्हीं के इंगित से वह मनुष्य को नचाती है। मनुष्य माया-जन्य भ्रम के कारण परिस्थितियों पर सुख-दुःख का आरोप करता है। सच्ची वस्तु-स्थिति को वह समझता नहीं। माया का नाश भगवान् राम की कृपा से ही हो सकता है। राम की कृपा का एक मात्र साधन भक्ति है। यह तुलसी का मौलिक मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के मानस की आधार-भूमि भक्ति है। उसे दर्शन से पुष्ट किया गया है। उस पर सवादों की दीवार उठाकर कथावस्तु से राम-सीता-मंदिर की स्थापना की गई है। छन्द, रस, अलंकार, संवाद, वर्णन, स्तुतियों और गीताओं

का उपयोग इस विशाल मंदिर की सामग्री के रूप में हुआ है। इसमें अतकथाओं और कथा-संकेतों के भरोसे लगे हैं। काव्य की सुन्दर मीनाकारी से यह मंदिर विभूषित है। प्रारम्भिक विनय-चौपाइयों से पाठक भीतर प्रवेश करता है और शिव-पार्वती-कथा, नारदमोह, भानुप्रताप और स्वयंभू-शतरूपा की कथाओं की ड्योढ़ियों को पार करता हुआ रामकथा के मुख्य मूर्ति-भवन में प्रवेश करता है। यहाँ उसे भगवान-राम, भगवती सीता, पार्वती-स्वरूप लक्ष्मण-हनुमान की माँकी मिलती है और राम ही के समान एक प्रभावशाली तापसमूर्ति सामने आती है—यह भरत है। आदश चरित्रों से मंडित तुलसी की रामकथा ने जनता के लिये एक साथ प्राथनाभवन और शिक्षा-गृह का निर्माण किया है।

उच्च-से-उच्च कल्पना के दर्शन करना हो तो तुलसीदास की उत्प्रेक्षाएँ देखिए और उनकी काव्य-प्रातिभा को देखना हो तो उनके रूपको का निर्वाह देखिए। सीता के रूप की सत्यत, स्वच्छ और पुण्यमय कल्पना—

जौ पटतरिअ तीय सम सीया ।
 जग असि जुवति कहाँ कमनीया ॥
 गिरा मुखर तनु अरध भवानी ।
 रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
 विष वारुनो बडु प्रिय जेही ।
 काहअ रमा सम किमि बैदेही ॥
 जो छवि सुधा पयोनिधि होई ।
 परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
 सोभा स्तु मदरु सिगारु ।
 मर्थ १॥६ पकज निज मारु ॥

एहि विवि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल ॥

उनके आदर्शवाद को देखना है तो रथरूपक देखिये—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यदन आना ॥
सौरज वीरज तेहि रथ चाका । सत्य मील दृढ-वज्रा-पताका ॥
बल विवेक दम परहित घोरे । छद्मा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईसु-भजन मारथी सुजाना । विरति मर्म सतोष कृपाना ॥
दाम परसु बुद्धि सक्ति प्रचटा । वर विग्यान कठिन कोदडा ॥
अमल अचल मन द्रोन समाना । सम जम नियम मिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूना ॥
सखा वर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहे न कतहुँ रिपु ताकें ॥

महा अजय समार रिपु, जीति सकइ सो वीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मतिवीर ॥

उनकी भक्ति को देखना है तो सारा अयोध्याकांड उत्तरार्द्ध उपस्थित है । मनोविज्ञान और हिन्दू-गृहस्थ-जीवन के निरूपण मे अयोध्याकांड का पूर्वाद्ध वेजोड है । दार्शनिक विवेचन के लिए उत्तरकांड का अधिकांश भाग उपस्थित किया जा सकता है ।

हिन्दी साहित्य मे तुलसी ही ऐसे कवि है जिन्होंने अपने समय की दो प्रमुख काव्य-भाषाओं का अत्यन्त उत्कृष्ट प्रयोग किया अपने समय की सभी प्रचलित शैलियों मे रचना की, अनेक छंदों पर सरलता से लेखनी चलाई और उनमे से प्रत्येक के रस, अलंकार और ध्वनि भरने मे सफल हुए । उनके साहित्य मे लोक और परलोक, काव्य और धर्म, मृत्यु और अमृत्यु की सीमाएँ आ जुड़ी हैं ।

तुलसी हिन्दी-साहित्य के महाकवि हैं, भक्तों में शिरोमणि हैं और नैतिक क्षेत्र में धर्मगुरु हैं। उनका महत्व अद्भुत है।

जब हम तुलसी में पूर्व के काव्य-साहित्य को देखते हैं तो उसमें भाषा, काव्य, धर्म और विचारधारा की दृष्टि से कितनी ही ऐसी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जिन्हें तुलसी ने समझ-बूझकर ग्रहण किया है और अपनी रचनाओं में सर्वोच्च विकास को पहुँचाया है। भाषा की दृष्टि से तुलसी अवधी और ब्रजभाषा दोनों के पूर्वकवियों के ऋणी हैं। उनमें पहले इन दोनों भाषाओं में रचनाएँ हो चुकी थीं। अवधी भाषा का प्रयोग सूफ़ी कवियों ने धार्मिक कथाकाव्यों के लिए किया था और तुलसी उनके ग्रन्थों से परिचित जान पड़ते हैं यद्यपि भाषा सीखने के लिए उन्हें उनके काव्य न पढ़ने पड़े होंगे। यह तुलसी की विशयता है कि उन्होंने इन्हीं धार्मिक काव्यों की परम्परा में रामचरितमानस जैसी चीज दी। ब्रजभाषा काव्य में प्रबन्धात्मकता की कमी थी, कथाकाव्य का प्रयोग सूर में असफल है। वह गीतों और कवित्त-संवेधों की भाषा होकर रह गई थी। दूसरे, तुलसी के चरितनायक का सम्बन्ध अवध से था। इसीसे तुलसी ने मानस की भाषा अवधी चुनी। पूर्ववर्ती सूफ़ी कवियों की भाषा से मानस की भाषा की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने उसे उसी प्रकार संस्कृत का पुट देकर विकसित किया है जिस प्रकार सूर ने पूर्ववर्ती ब्रजभाषा को। संस्कृत शब्दकोष और संस्कृत काव्य-मज्जा न तुलसी के मानस को इतना पुष्ट कर दिया कि उनके बाद के कवि किसी भी दिशा में उनका विकास नहीं कर सकें। साधारण लोकभाषा को काव्य की ही नहीं, रामधर्म की भाषा उन्होंने बना दिया और इसका फल यह हुआ कि उनके बाद आधुनिक काल तक सारा रामकाव्य इसी भाषा में लिखा गया।

काव्योत्कर्ष की दृष्टि से परिस्थिति इससे भी पुष्ट है। तुलसी ने

अपने पहले के सारे संस्कृत और हिन्दी-काव्य से लाभ उठाया है। “नाना पुराण निगमागम सम्मत”—वात प्रत्येक प्रकार से ठीक है। कथा-सौष्ठव चाहे उनका हो परन्तु वे कथा के लिए अवश्य ही वाल्मीकि, प्रसन्नरावण और हनुमन्नाटक के ऋणी हैं—विषय-विस्तार के समय उन्होंने संस्कृत के सैंकड़ों सुभाषितों को हिन्दी में गूँथ दिया है। अकेले मानस पर दो-दोई सौ संस्कृत ग्रन्थों का ऋण है। स्वयं तुलसी ने कम नहीं दिया है परन्तु संस्कृत-काव्य का मथन भी कर दिया है जिससे मानस संस्कृतज्ञों का भी प्रीत रहा है। २० वर्ष बाद जब केशवदास को रामचरित पर कथा लिखने की सूझी तो वे तुलसी के काव्य से इतने दबे हुए थे कि उन्होंने संस्कृत के आचाय होते हुए भी संस्कृत राम-काव्य से विशेष सहारा लेना उचित न समझा और सारी रचना को मौलिक योजना पर खड़े करने के प्रयास के कारण असफल रहे। तुलसी के बाद राम-काव्य का कोई भी पहलू आगे नहीं बढ़ सका—इतना कुछ तुलसी स्वयं कर गये थे। परवर्ती कवियों को कोई नवीन दिशा ही न सूझी।

परन्तु तुलसी की सूक्ष्म दृष्टि ने यह देख लिया था कि केवल संस्कृत के ग्रन्थों को मथने से ही काम नहीं चलेगा, उन्होंने हिन्दी के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया और छन्द, भाषा और भाषा की दृष्टि से अपने क्षेत्र की सारी सामग्री बटोरकर राम के चरणों में धर दी। चंद के पिगल काव्य की छटा देखनी हो तो पढ़िये—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर ।

ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिग्पाल चराचर ॥

दिग्गयद लरखरत परत दसकण्ठ मुख भर ।

सुर विमान हिमभानु भानु सघटित परस्पर ॥

चौंके विरचि सकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ।

ब्रह्मांड खड कियो चड धुनि, जबाह राम सिवधनु दल्यौ ॥

कबीर का सतज्ञान लगभग उसी भाषा में “वैराग्य सद्दीपनी” में मिलेगा। वीर कवित्तो-सवैयो की परम्परा में “कवितावली” का विशिष्ट स्थान है। विशेषकर उसके सुन्दरकांड का शौर्य और ओज और उसकी रस-पुष्टता भूषण के कवित्तो-सवैयो में भी न मिलेगी। सूर के काव्य का तुलसी ने विशेष रूप से अध्ययन किया था। हम सूर के काव्य को दो भागों में बाँट सकते हैं—विनयावली और कृष्णकथा। तुलसी ने विनयावली के स्थान पर उससे कहीं पुष्ट और कहीं अधिक काव्य सौष्ठव-पूर्ण विनयपत्रिका दी। सूर की कृष्णकथा के समक्ष “रामगीतावली” में रामकथा लिखी। उसकी वात्सल्यरस और शृंगार की योजना के लिए तो वे एकांततः सूर के आश्रित हैं पदलालित्य की सृष्टि के लिए भी उन्हें भाषा, भाव, शब्दकोष—सब में बहुत कुछ सूर से लेना पड़ा है परन्तु यह सब लेकर उन्होंने राम-काव्य को सर्वग्राही, सर्वहार ही बनाया है। “कृष्णगीतावली” में सूर का ऋण उनके सिर पर चढ़कर बोल रहा है। संभव है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में श्रीकृष्णस्तोत्र दिया हो और उनके शिष्यों और प्रशंसकों ने सूर के पद उसके आगे पीछे जोड़कर उनके नाम पर चलाये हो या स्वयं उन्होंने कुछ अपनी रचनाओं को इस स्तोत्र के साथ सूर की रचनाओं में जोड़ दिया हो। जो हो परिस्थिति स्पष्ट है। कृष्णगीतावली में कथा विशृङ्खल है, सूर के क्षेत्र में तुलसी असफल ही नहीं है, वे उनकी ही वाणी प्रतिध्वनित कर रहे हैं। सतसईपरंपरा में तुलसी ने सतसई लिखकर योग दिया और खडकाव्य की परम्परा को जानकीमंगल और पार्वतीमंगल दिये। दोनों मंगलों की रचना विवाह-समय के गीतों का स्थान लेने के

लिये की गई हैं। इससे स्पष्ट है कि तुलसी जन-समाज पर तीव्र दृष्टि रखते हैं और अपने कुछ काव्यों में जहाँ उन्होंने पंडित वर्ग का ध्यान रखा है वहाँ निम्न वर्ग के सम्कारों और रीति-रिवाजों को रामधर्ममय बनाने से भी नहीं चूके हैं। प्रचलित लोकछन्दों सोहर और बरवै का प्रयोग बात को स्पष्ट करता है। रामलला नहछू की अश्लील शृंगारिकता (जिसके लिये कवि लांछित किया जाता है) कवि के जनहृदय तक पहुँचने की जीवन्त चेष्टा-मात्र है। बरवै का इतिहास चाहे जो रहा हो इस छंद में रामकथा ढाल कर तुलसी ने जन-हृदय को ही स्पर्श किया है। रामाज्ञा प्ररन और राम-शलाका में हम उन्हें अपने युग के कवि-कर्म को पूरा करते हुए पाते हैं।

परन्तु तुलसी के समय में जो काव्यप्रगति बलवती होकर अपने वेग से तट को तोड़ती-फोड़ती उछलने-कूदने लगी थी और जिसकी सहज चंचल किशोरी प्रकृति ने जनता का ध्यान हठात् अपनी ओर खींचा था वह थी विलास की प्रवृत्ति। हमारा तात्पर्य रीतिकात की मूलधारा से है जिसका अंतःस्रोत ब्रजभाषा कवियों में उमड़ पड़ा था। इस विलासकाव्य की तीन-चार प्रवृत्तियाँ थी और तुलसी पर अनेक रूपों से उनकी प्रतिक्रिया हुई—

(१) अलंकारों को आधार बनाकर रचना करने का प्रयत्न—यह प्रवृत्ति बरवै रामायण में स्पष्ट है। ऐसा लगता है कि अलंकार कौशल-प्रदर्शन-मात्र के लिए ही इसके कथामात्र की रचना की गई है।

(२) कूट-काव्य-पांडित्य—इसके भी दो-एक उदाहरण मिल जाते हैं।

(३) विलास-प्रवृत्ति—रामलला नहछू और बरवै में यह

प्रवृत्ति प्रमुख रूप से मिलती है। रामगीतावली, मानस आदि रचनाओं में हम इसे प्रच्छन्न रूप में जहाँ-तहाँ पाते हैं। परन्तु तुलसी ने इस युग की विलासिनी प्रवृत्ति के प्रति विरोध ही प्रगट किया है। रामचरितमानस में उन्होंने राधाकृष्ण को एकांत विलास-निष्ठा के समकक्ष रक्खा है राम का एकपत्नीव्रत (जो पू्वराग में उच्छृङ्खल नहीं होता) और सीता की गौरवमय पतिनिष्ठा। मुन्दरकांड में सीता का वियोगवर्णन शृंगारकाव्य के अतगत होकर भी उससे भिन्न पड़ता है। यहाँ वह पतिव्रत धर्म का जागरूक रूप है। उस वियोग का अन्त विलास में नहीं है, पतिसंवा में है। उत्तरकांड का सीतागृहिणी का जो चित्र है वह साता के वियोग को दाम्पत्य प्रेम के अमृतजल से पवित्र कर देता है। साता का नखसिख-वर्णन कहीं भी नहीं मिलता। मानस में नारी-सौन्दर्य के प्रति एकनिष्ठ अवहेला के लिए तुलसी की जागरूकता देखने योग्य है और कभी-कभी उन्हें नारी-विरोधा भी बना देती हैं। सीता के प्रति दैवी भावना और अपन युग के शृंगार के प्रति यथेष्ट विरोध, यही दो कारण इसके मूल में हैं। जो हो, तुलसी के समय के नीचे उनका सौन्दर्य और प्रेम के प्राप्ति तीव्र आकर्षण प्रच्छन्न रूप से वर्तमान है। काव्य के स्वरो में युग की शृंगार-प्रवृत्ति से बहुत ऊपर समय के तपे हुए देश में पहुँच कर भी तुलसी कहीं कथा के लिए, कहीं वातावरण के द्वारा शृंगार की भूमि पर खिच ही आते हैं। यदि रामकथा में उनके अद्वितीय समय को देखना है तो उनकी रचनाओं को वात्मीकि और केशव के साथ पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। कथा-विकास, पात्र-निरूपण, दाम्पत्य-प्रेम-चित्रण, वर्णन सभी में आश्चर्यजनक समय मिलेगा।

तुलसी के बाद न उनकी रामकथा का ही विकास हुआ, न रामकाव्य अधिक उत्कर्ष को प्राप्त हो सका। कारण स्पष्ट है। दोनों मार्ग

तुलसी ने स्वयं बंद कर दिए थे। इसके अतिरिक्त तुलसी के मानस ने तो धर्म-ग्रन्थ का रूप प्राप्त कर लिया और श्रद्धाम्पद कवियों ने तुलसी से स्पर्द्धा न की। स्वयं रामकथा ऐसी बँधी-सर्धी वस्तु है कि “फुरकरिए” कवि उस ओर परम्परा निभाने के सिवा विशेष प्रयत्न का ध्यान ही नहीं कर सकते थे। यहाँ कृष्ण-कान्य की तरह किसी एक अंग को लेकर नवीन अनुभूति भरने या पुराने मधु को नये पात्र में भरने भर की बात नहीं थी। ऋग-या य में इस तरह के अंग थे जो युग की विलास-प्रवृत्ति एवं पांडित्य-प्रदर्शन की अभिरुचि को प्रश्रय देते थे। पहले में राधाकृष्ण और गोपियों की अनेक क्रीड़ाएँ, हास-परिहास, विरहमिलन। दूसरे में भ्रमरगीत। मध्य-युग के कृष्ण भक्तिकाव्य के बाद कृष्णकाव्य के इन्हीं दो अंगों पर सहस्र-सहस्र मुक्तक रचनाएँ सामन आईं। काव्य-शास्त्र-चर्चा के बहाने कवियों ने व्यास की गोपीकृष्ण की रहस्यलीला को गली-कूचों में फिरने वालों का खेल-तमाशा बना दिया और समाज ने सम्भ्रत नायक-नायिका नहीं—निम्न श्रेणी के प्रेमी-प्रेमियों के रूप में राधा-कृष्ण को देखा। रामसीता भी अयोध्या के महतो की कृपा से साहित्य की इस तक में फँस गण, परन्तु फिर भी तुलसी की रामसीता की दिव्य दम्पति-मूर्ति धर्म और काव्य के उच्च देव-सहायन पर आरुढ़ रही। यह समकालीन और परवर्ती काव्य पर तुलसी के महान् काव्य की विजय नहीं तो और क्या है ?

इसीसे जब हमें हिन्दी के साहित्य में तुलसी के स्थान को आँकना है, तो इस विस्तृत पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। तुलसी और सूर—यही तो हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। “सूर सूर तुलसी शशि।” परन्तु जहाँ सारा परवर्ती काव्य सूर की रचनाओं का ही बहुवाणीविलास है, वहाँ तुलसी का काव्य चट्टान की तरह खड़ा रहता है और कवि उससे स्पर्द्धा करने की तोलना ही क्या, उससे

प्रभाव भी ग्रहण नहीं करते। वृंदावन के कुछ मंदिरों में दो तरह की मूर्तियाँ हैं—एक चल, दूसरी अचल। उत्सवो-समारोहों के समय यही मूर्तियाँ बाहर निकाली जाती हैं। और सोने-चाँदी मोती-पन्ने से सजा कर बाजार में घुमाई जाती हैं। भक्त लोग प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं और घर पर आकर अपनी-अपनी मूर्तियाँ भी उसी तरह सजाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु अचलमूर्ति इस सारे समय मंदिर की निर्जनता में एकांत तपस्या करती होती है। जहाँ भीड़ की मॉग है, वहाँ उसका कोई स्थान नहीं है। वह अपनी निश्चल तपगरिमा में मग्न है। उसे प्रशंसा नहीं चाहिये स्पर्शा नहीं चाहिये उससे किसी को रस ग्रहण करना हो तो वह हृदय खोल कर ले, केवल मार्ग में आँखें खोल कर ढूँढ़ने से उसे कुछ न मिलेगा। परन्तु वर्ष भर भक्तों के श्रद्धा-फल इसी अचल मूर्ति पर चढ़ते हैं। रस चाहे चल मूर्ति दे, वरदान अचल मूर्ति से ही मिलना है। मूर और तुलसी के काव्यों की भी यही परिस्थिति है। तुलसी का काव्य मंदिर में प्रतिष्ठित अचल प्रतिमा है, मूर का काव्य मंदिर के भीतर है परन्तु वह मंदिर के बाहर की चल प्रतिमा होकर ही परवर्ती काव्य को प्रभावित कर सका है।

तब हमें प्रभाव की बात भी जानने देना चाहिये। केवल मात्र काव्य को ही देखना ठीक है। इस दृष्टि से तुलसी और मूर का तुलनात्मक अध्ययन हम 'मूरसाहित्य की भूमिका' में कर चुके हैं। वहाँ जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचे हैं उससे स्पष्ट है, हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में तुलसी अनन्य है। उनकी तीन रचनाएँ हिन्दी-काव्य की अमूल्य सम्पत्ति हैं। ये तीन ग्रन्थ रामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावली। पहला सभी दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। दूसरे के जोड़ की चीज़—भागवत को छोड़ कर—न संस्कृत में है, न हिन्दी में, न किसी

दूसरी भाषा में । परन्तु भागवत से भी विनयपत्रिका की तुलना कैसे होगी ? भले ही गीतात्मकता भागवत के भक्तिगीतो में हो, हृदय की विह्वलता हो, स्तोत्रों में पाडित्य हो, परन्तु तुलसी जैसा सौष्ठव, वैसा काव्यलालित्य और सगीत वहाँ भी दुर्लभ है । रसपरिपाक की दृष्टि से, विशंपकर परुष रसों के निरूपण में, हिन्दी का कोई काव्य-ग्रन्थ कवितावली का जोड़ नहीं बन सकता । फिर कवितावली में रस के सिवा भी बहुत कुछ है—आत्मश्लानि, दैन्य, राम का शौचपूर्ण सौन्दर्य, स्निग्ध दाम्पत्य-प्रेम और स्वयं कवि का विराग । इन तीन ग्रन्थों की सामग्री को अभी तक किसी एक कवि ने हमें नहीं दिया ।

परन्तु हमें यही नहीं रुक जाना है । हमें आगे बढ़ कर यह भी देखना है कि तुलसी ने हिन्दी के माध्यम से भारतीय भावधारा और चित्तन को क्या दिया ? इसके बिना हमारा तुलसी का अध्ययन अधूरा होगा । काव्य पर विशेष प्रभाव न सही, परन्तु परवर्ती भारतीय भावधारा और मनीषा पर तुलसी का जो प्रभाव है, उसे छोटा नहीं किया जा सकता ।

तुलसी ने भारतीय भाव-धारा को क्या दिया, यह तो तुलसी के किंसा भी पाठक से पूछा जा सकता है—राम में ब्रह्मभावना करते हुए दैन्यभाव से उनकी प्रति भावुकतापूर्ण भक्ति । मानस और विनयपत्रिका यह दो ग्रन्थ उनकी भावधारा को इसी ओर प्रवाहित करते हैं । मानस में हमें उनकी भक्ति का एक रूप मिलता है । उसे हम ज्ञानाश्रित अद्वैतभक्ति कह सकते हैं । यही भावना विनय पत्रिका में अनन्य भक्ति हो जाती है जहाँ मूलतः अद्वैत तत्त्व को जानता हुआ भक्त भावना में डूब कर द्वैतभाव से दैन्य रखता हुआ भक्ति करता है । परन्तु इस अनन्य भक्ति का पालन करते हुए भी

तुलसी अवतारवाद और देवतावाद को स्वीकार करते हैं। उपासना के क्षेत्र में यह सामञ्जस्य विचित्र है, परन्तु यही तुलसी की मौलिकता भी है। अपने ग्रन्थों के माध्यम से तुलसी ने इसे ही देश के धर्म समाज को दिया है। दोनों प्रधान ग्रन्थों में हम इसको विकसित देखते हैं। मानस में शिव और राम में जैसा सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वह देशकाल के लिये उपयोगी था, यह ऐतिहासिक सत्य है। उस समय वैष्णवों और शाक्तों में घमासान युद्ध हो रहे थे। बात दक्षिणापथ की थी। उत्तर में इस प्रकार के धर्म-कलह उपस्थित थे इसका प्रमाण स्वयं तुलसी की कविता में मिलेगा, परन्तु दोनों पक्षों की ओर से विरोध सहते हुए भी तुलसी ने राम और शिव में परस्पर “सेवक स्वामि सखा” का नाता जोड़ा और शिवभक्ति को राम-भक्ति की भूमिका बना दिया। उनके राम ने स्वयं कहा—

शिव द्रोही मम दास कहावैं ।

सो नर सपने मोहि न भावैं ॥

रामचरितमानस की भूमिका में इसीलिये शिवचरित की प्रतिष्ठा हुई। गरुड़-कागभुसुण्डि-सवाद में काग के चरित में निर्गुण-सगुण का भी समाधान किया गया और “हिम-जल-उपल” की उपमा से रूपों के भीतर अरूप और अरूप के भीतर रूप की प्रतिष्ठा का सामञ्जस्यमय सिद्धान्त समझाया गया। विनयपत्रिका में देवतावाद की स्वीकृति ही नहीं है, उसका परिहार रामभक्ति में हुआ है। अब देवताओं का प्रेम राम की ओर ही उन्मुख होता है, इस सिद्धान्त में न कोई देवता छोटा है न बड़ा। यह सिद्धान्त तुलसी का व्यक्तिगत सिद्धान्त नहीं है, पद्म पुराण और अध्यात्म में शिव-विष्णु का सहज सम्बन्ध स्थापित था ही। देवतावाद के भीतर ब्रह्म की प्रतिष्ठा बहुत प्राचीन काल में होती आई है, ऋग्वेद और उपनिषदों से भी उद्धरण दिये

जा सकते हैं। परन्तु तुलसी ने इन्हीं सिद्धान्तों को एक बार फिर व्यक्तिगत अनुभूति का बल देकर जनता के सामने रखा और जनता ने इन्हें “तुलसी का मत” मान कर ग्रहण किया।

परन्तु तुलसी ने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम किया। वह है सामाजिक क्षेत्र में पग-पग पर समय की महत्ता का प्रदर्शन परम्पर के सहयोग, शिष्टाचार, सदाचार, सहानुभूतिपूर्ण आदान-प्रदान—यही तो समाज की भित्ति है। इन्हीं भावनाओं पर तुलसी ने बल दिया। उस युग की पृष्ठ-भूमि में रखने पर हमें जान पड़ेगा कि यह कितने क्रांतिकारी सिद्धान्त थे। भारतीय कौटुम्बिक जीवन में सम्मिलित परिवार और सामाजिक जीवन के पारम्परिक सहानुभूतिपूर्ण भावना के साथ मर्यादाभाव से वर्णाश्रम का पालन—यही तुलसी के मतव्य है। परन्तु आज की स्वतंत्रता की आवाज इनमें कहाँ मिलेगी ? हमें कवि की प्रगतिशीलता को जाँचने के लिए उसके युग की वीथिका की ध्यान में रखना पड़ेगा। आज के दृष्टिकोण से तो हम यही कहेंगे कि तुलसी ने भारतीय समाज के वर्ग-विभाजन को ही प्रश्रय दिया और उनके साम्राज्य में शूद्र और नारी को रचमात्र में सुख नहीं होता। यह हम नहीं कहते कि तुलसी अपने समय से ऊपर उठ कर भविष्य को नहीं देख पाते। हमें यह कहना है कि तुलसी ने एक विशेष पहलू से जीवन को देखा और उन्होंने अपने समय के उच्छृङ्खल अनाचारमय जीवन के लिए एक विशेष प्रकार के निदान बताये। दूसरे प्रकार के निदान आज हमारे सामने आ रहे हैं। हमें देखना है कि ये कितने सफल होते हैं। परन्तु तुलसी ने जिस विशेष प्रकार का उपचार सामने रखा उसने परिवर्तनशील समाज को भित्तियों पर टढ़ रखा और उनके समय में ही नहीं, बाद में भी, धार्मिक और सांस्कृतिक वैमनस्यपूर्ण बवडरों से समाज की रक्षा की। दो सौ वर्ष बाद आने वाले ईसाई मतवाद

और पाश्चात्य सभ्यता की वेगवती अनिष्टकारी बाढ़ों में भी उसने समाज की नौका की गतिविधि का नियन्त्रण किया और उसे कम-से-कम उतराए रखा। इतना ही क्या कम है ? तीन सौ वर्ष तक उत्तर-भारत के जिस जर्जर हिन्दू-समाज और धर्म को तुलसी एकता के तागे के पिरोये रहे, वह क्या कभी उनके ऋण को चुका सकेगा ?

तुलसी का संदेश

प्रत्येक महान् काव्य का अपना महान् सदेश होता है। यदि यह ठीक है तो हमें तुलसी के काव्य में भी कोई सदेश ढूँढ़ना पड़ेगा— यह सदेश क्या है? उसमें पिछले सदशों की अपेक्षा क्या नवीनता है? वह क्यों महान् सदेश है? मानव-जीवन के विकास के लिए उसकी क्या आवश्यकता है और क्यों?

प्रत्येक पाठक जो तुलसी के काव्य से परिचित है, उनके मुख्य सदेश को समझ लेता है। उसके बारे में किसी भी प्रकार का सदेह हो ही नहीं सकता। वह सदेश है रामभक्ति। सारा मानस इस सदेश से ओत-प्रोत है। परन्तु रामभक्ति कहने भर से काम नहीं चल जाता। हमें, पिछले प्रश्नों का उत्तर देना होगा। तुलसी के रामभक्ति के संदेश की उपादेयता क्या है? रामभक्ति का अर्थ है रामाश्रित जीवन। इस रामाश्रित जीवन पर चलनेवाले व्यक्ति को तुलसी ने "सत" कहा है। इसमें श्रेष्ठ मानव-गुणों का सग्रह आवश्यक हो जाता है। यह श्रेष्ठ मानवगुण ही मनुष्य के जीवन को आगे बढ़ाते हैं। धर्मरथ के रूपक में इन्हीं श्रेष्ठ गुणों का निर्देश है। ये श्रेष्ठ गुण नीति-निरपेक्ष हैं, स्वयं सत्य हैं।

परन्तु तुलसी यही नहीं रुक जाते। वे पाठकों के आगे सर्वमान्य सत्य ही नहीं रख देते परन्तु साथ ही आचरण और व्यवहार पर

भी ध्यान देते हैं। वे उच्च नैतिक आदर्शों और सामाजिक आदर्शों को भी हमारे सामने उपस्थित करते हैं। ये कई हैं—

- (१) कुटुम्ब के आदर्श
- (२) गुरुजन के प्रति आदर्श
- (३) परिजन के प्रति आदर्श-व्यवहार
- (४) राजा, राजसमाज और पुरजन के आदर्श
- (५) मित्र और विरोधियों के आदर्श

इस प्रकार वे पाठक को आदर्श कुटुम्ब, आदर्श समाज और आदर्श काव्य की ओर आगे बढ़ाते हैं। केवल वर्णन में ही नहीं, कथा-सूत्र में भी इन आदर्शों को गूँथ दिया गया है। यदि हम इन आदर्शों को एक शब्द में रखना चाहें तो वह शब्द “मर्यादा” है। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। स्वयं तुलसी मर्यादित जीवन के पक्षपाती हैं। उन्होंने कलियुग की उच्छृङ्खलता की कड़े शब्दों में भर्त्सना की है। उन्होंने अपने चरित्रों को इस ढंग से गढ़ा है कि उनमें मर्यादा भाव का ही पोषण हो। बाल्मीकि रामायण के राम के कुटुम्ब के सदस्यों में जो उच्छृङ्खलता है, उसे उन्होंने स्थान ही नहीं दिया है। संयम, शील और सदाचार—ये तुलसी के रामाश्रित जीवन की वृहद्व्रयी हैं।

और विराट् धर्मभूमि पर उतरकर देखें तो तुलसी सत्य तथा धर्मपरायणता की अधर्म तथा पाप पर विजय घोषित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। राम-रावण-युद्ध सत्य-असत्य और पाप-पुण्य का ही युद्ध तो है। साधारण रूप से रामकथा का जो ढाँचा मिलता है,

उसे तुलसी ने बदल कर उपस्थित किया है। रावण है असत्य और पाप। पहले तुलसी उसका विभव वणन करते हैं—एक बुद्ध आतताई से बढ़ कर रावण सारे विश्व में अनाचार और बवडर के रूप में व्याप्त हो जाता है। पाप इतना बलवान हो जाता है जितना कभी नहीं था। अतः में एक नारीहीन, राज्यहीन, शक्तिहीन तापस-राजकुमार अपदाथ ऋक्ष-बानरो को लेकर अपने सत्य के बल पर उस महान् असत्य का सामना करता है। पाप अपने तीक्ष्णतम अस्त्रों का उस पर प्रयोग करता है परन्तु अतः में विजय सत्य ही की होती है। रामावतार का अर्थ है अधर्म पर धर्म की जय। तुलसी ने रामावतार की कथा इसी विशद, महान् और लोकोत्तर धर्मभूमि पर प्रतिष्ठित की है। इसीसे राम के दुष्कृत्य भी वहाँ धर्मकृत्य हो जाते हैं। शूषेनखा का अंग-भग और बालि-वध राम पर लाञ्छना नहीं ला सकते। इन प्रसंगों पर भी राम दृढ़ धर्मभूमि पर अवस्थित है। वे यहाँ भी मर्यादा का पालन कर रहे हैं। मर्यादा की पुकार है —

आततायिनमायान्त हन्योदवाविचारयन् ।

(जो आततायी है, उसका सहार ही विहित है) । बाली के प्रश्न पर राम स्वयं कहते हैं—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥

इन्हहिं-कुदृष्टि विलोकइ जोई । ताहि बधे कछु पाप न होई ॥

सुग्रीव शरणागत और प्रपन्न भी था, अतः क्षत्रिय के नाते भी उन्हें यही करना था। अजुन की तरह सुग्रीव ने भी राम के स्वरूप को

पहचान कर हथियार डाल दिये थे, परन्तु स्वयं राम ने उसे बालि के विरोध में खड़ा किया। यदि वे ऐसा नहीं करते तो धर्म की मर्यादा जाती, आततायी को आश्रय मिलता। धर्म की हानि होती। यही बात शूर्पनखा के अग-भग के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

ऐसे भी स्थल आते हैं जब हम “क्या धर्म है ?” यह पहचान नहीं पाते। धर्म की अनेक भूमियाँ हैं—गृह-धर्म, कुल-धर्म, समाज-धर्म, लोक-धर्म और विश्व-धर्म या पूर्ण-धर्म। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। परिस्थितियाँ ऐसी आ सकती हैं जब दो में विरोध हो। तब धर्म क्या है ? ऐसी दशाओं में अधिक श्रेष्ठ भूमि पर कम श्रेष्ठ भूमि को बलिदान करना होगा। भरत ने राम के वनवास की सूचना पाकर माता कैकेई को कटु वचन कहे तो उससे वह पुत्र-धर्म से च्युत नहीं हो जाते। राम का सुख-दुख था विस्तृत जनसमूह का सुख-दुख। इसीलिये राम के प्रति अन्याय देख कर भरत को पुत्र-धर्म से दृष्टि हटा लेनी पड़ी। इसी प्रकार रामभक्त विभीषण ने राम-धर्म (लोकहित या लोकरजन) पर गृह-धर्म को बलि कर दिया परन्तु वह भ्रातृ-द्रोही नहीं कहा जा सकता। यदि धर्म का अर्थ है लोकरजन अथवा लोक कल्याण, तो तुलसी की रामकथा में उसका रूप शुद्ध और कल्याणकर रखने का गभीर प्रयत्न स्पष्ट है।

साधारण पाठक कैकेई और रावण के प्रति तुलसी को अन्यायी ठहराता है परन्तु वह यह नहीं समझता कि तुलसी ने राम को धर्म का साम्यवाची माना है। तुलसी के राम धर्म-स्वरूप हैं। वे अधम के नाश के लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। धर्म के तिरस्कार से उत्कृष्ट पात्र के हृदय में रोष का आविर्भाव अवश्यम्भावी है। इसीलिये

तुलसी मथरा, कैकेई और रावण को पद-पद पर कठोर वचन कहते हैं । राम के धर्मरूप को भलीभाँति न पहचान कर लोग इन स्थलों पर सदेह में पड़ जाते हैं ।

वस्तुतः मानस की राम कथा तीन धरातलो को छूती हुई चलती है—ज्ञान, भक्ति, धर्म । ज्ञान की भूमिका में तुलसी ने राम के ब्रह्मत्व का आविष्कार किया है और ब्रह्म, जीव, जगत और माया की विशद रूप से चर्चा की है । यहाँ राम पूर्ण-ज्ञान ब्रह्मपर हैं । भक्ति की भूमिका में तुलसी राम को ब्रह्म का अवतार सगुण दाशरथि राम लेकर आगे चले हैं । रामलीला वस्तुतः ब्रह्म की अलौकिक लीला है जिससे निःश्रेयस (मोक्ष या रामपद प्राप्ति) की सिद्धि होती है । धर्म की भूमिका में तुलसी ने रामलीला में धर्म का प्रकाश देखा है । यहाँ उन्होंने परात्पर ब्रह्म और सगुण ब्रह्म-अवतारी राम को कर्मक्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है । धर्म की अभिव्यञ्जना लोक-व्यवहार में होती है, अतः तुलसी ने कर्मक्षेत्र 'समार' को ही धर्मक्षेत्र माना है । तुलसी अकर्म के पोषक नहीं है । उनके नायक राम विरागी होकर भी लोकहित और लोकरजन के लिये (या कहिये, धर्म के लिये) कर्मरत रहे । इसी से हमें राम के समस्त कार्यों को लोकहित (व्यापक धर्म) के दृष्टिकोण से देखना चाहिये । तब हम रामकथा की उच्च धर्मभूमि से परिचय प्राप्त कर सकेंगे । राम को लेकर उनकी परम्परागत कथा के सहारे ज्ञान, भक्ति और कर्म (धर्म) के श्रेष्ठ-तम सिद्धान्तों का सामञ्जस्य उपस्थित करना तुलसी की आश्चर्यमयी प्रतिभा का ही काम है ।

केवल मानव-जीवन ही नहीं, तुलसी के लिये प्रकृति भी धर्मरूपा है । वर्षा-शरद वर्णन देखिये । तुलसी जड़चेतन सभी जगह धर्म

और नीति के श्रेष्ठतम तथ्यों को खोज निकालते हैं और उन्हें संदेश रूप में हमारे सामने रखते हैं।

सन्क्षेप में, तुलसी ने राम के व्यक्तिगत जीवन और महान् धर्म-चेतना को एक कथासूत्र में बाँध दिया है। उनकी रामकथा में राम की व्यक्तिगत चेतना उतनी भी नहीं है, जितनी बाल्मीकि की रामकथा में। राम-रावण युद्ध न राज्यविस्तार के लिये है, न सीता के लिये। तुलसी जिसे “देवकाय” कहते हैं—उसके लिये है। उसका तात्पर्य है अनाचार का नाश। भगवान राम के जन्म का हेतु ही यही है। बनवास के पीछे भी यही प्रेरणा है। बन में प्रवेश करते ही राम प्रण करते हैं—

निशिचर हीन करौ महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥

सीता को गुप्त करके छाया की स्थापना भी इसी कारण है। सीता हरण में स्वयं रामैच्छा प्रतिष्ठित है। सीताहरण और राम-विजय के बाद सीता की प्राप्ति गौण विषय है। मुख्य विषय है अत्याचारी राजसो का नाश। शेष निमित्तमात्र है। इस प्रकार राम का आदि, मध्य और पर्यावसान धर्म में है।

व्यक्ति के लिये तुलसी का संदेश है रामाश्रित जीवन जिसकी परिभाषा यह है—

सिय राम सरूप अगाध अनूप

विलोचन-मीनन को जल है।

श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम,

हिये पुनि रामहि को थल है ॥

मति रामहि सों, गति रामहि सों,
रति राम सों, रामहि को बल है ।
सब की न कहैं, तुलसी के मते
इतनो जग जीवन को फल है ॥

आज भी हम इन संदेशों में जीवन की एक महान् दिशा देख सकते हैं ।

